जैन चित्र कथा

चौबीस तीर्थंकर

भाग-1

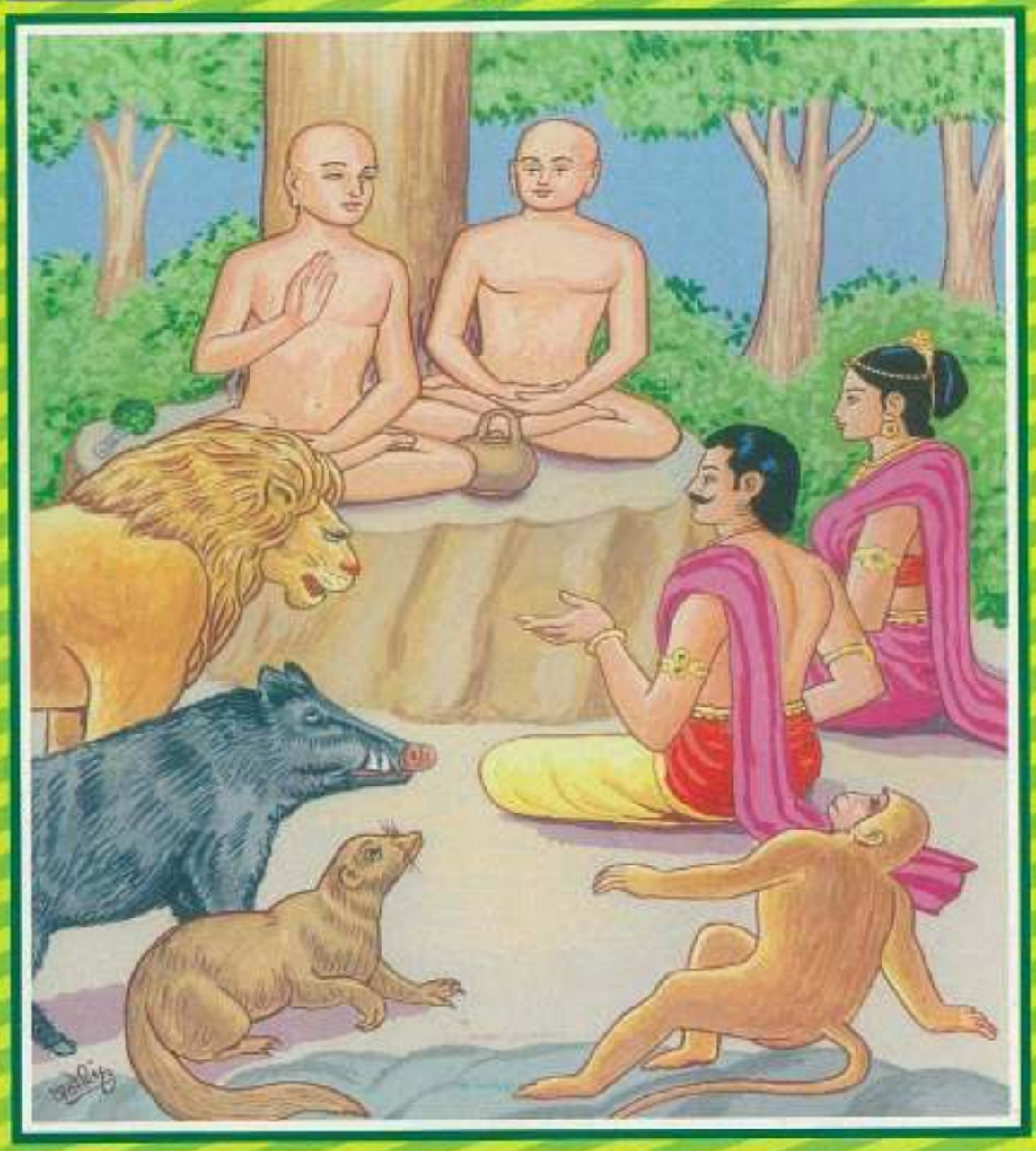

भगवान श्री आदिनाथ जी

सम्पादकीय

तीर्थंकर जैन धर्म का एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका भाव है, धर्म तीर्थ को चलाने वाला अथवा धर्म तीर्थ का प्रवर्तक। कभी ऐसा भी समय आता है, जब धर्म का प्रभाव क्षीण होने लगता है, उसमें शिथिलता आती है। उस समय ऐसे प्रखर ऊर्जावान महापुरुष जन्म लेते हैं, जो धर्म परम्परा में आई मलिनता और विकृतियों का उन्मूलन कर धर्म के मूल स्वरुप को पुन: स्थापित करते हैं ऐसे ही जगतोद्धारक महान् उन्नायक महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। ऐसे तीर्थंकर 24 होते हैं। तीर्थंकर संसार रुपी सरिता को पार करने के लिए धर्म शासन रुपी सेतु का निर्माण करते हैं। धर्म शासन के अनुष्ठान द्वारा अध्यात्मिक साधना कर जीवन को परम पवित्र और मुक्त बनाया जा सकता है। तीर्थंकर महापुरुष से मंडित होते हैं। जो समस्त विकारों पर विजय पा कर जिनत्व को उपलब्ध कर लेते हैं और कैवल्य प्राप्य कर निर्वाण के अधिकारी बनते हैं।

वर्तमान कालचक्र मे भगवान ऋषभदेव प्रथम और भगवान महावीर अन्तिम चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। चौबीस तीर्थंकरों के घटना चक्र के बारे में चित्र कथाओं के माध्यम से बाल पीढ़ी को जानकारी मिल सके इस हेतु चौबीस तीर्थंकरों को तीन भागों में पढ़ कर आत्म सात करें। तीर्थंकरत्व की उपलब्धि सहज नही है। हर एक साधक आत्म साधना कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, पर तीर्थंकर नही बन सकता। तीर्थंकरत्व की उपलब्धि बिरले साधकों को ही होती है। इसके लिए अनेकों जन्मों की साधना और कुछ विशिष्ठ भावनाएँ अपेक्षित होती हैं विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित साधक जब किसी केवलज्ञान अथवा श्रतु केवली के चरणों में बैठकर लोक कल्याण की सुदृढ़ भावना माता है तभी तीर्थंकर जैसी क्षमता को प्रदान करने में समर्थ तीर्थंकर प्रकृति नाम के महापुण्य कर्म का बन्ध करता है। इसके लिए सोलह कारण भावनाएँ बताई गई है जो तीर्थंकरत्व का कारण है पाठक गण इस चित्रकथा को पढ़कर तीर्थंकरों की विशेष जानकारी प्राप्त करें।

ब्रं धर्मचन्द शास्त्री
अष्टापद तीर्थ जैन मंदिर

जैन चित्र कथा

सुनो सुनायें सत्य कथाऐं

आशीर्वाद - श्री वर्धमान सागर जी महाराज
प्रकाशक - आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला एवं भा. अनेकान्त विद्वत परिषद
निर्देशक - ब्रं धर्मचंद शास्त्री
कृति - चौबीस तीर्थंकर भाग - 1
सम्पादक - ब्रं रेखा जैन एम. ए. अष्टापद तीर्थ
पुष्प नं. - 51
चित्रकार - बने सिंह राठौड़
प्राप्ति स्थान - 1. अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर
2. जैन मन्दिर गुलाब वाटिका

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर
विलासपुर चौक,
दिल्ली-जयपुर N.H. 8,
गुड़गाँव, हरियाणा
फोन : 09466776611
09312837240

मूल्य-25/- रुपये

चौबीस तीर्थंकर भाग-1

भगवान श्री आदिनाथ जी

चित्रांकन - बनेसिंह

इस मध्यलोक में असंख्य द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बू द्वीप है। उसी विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के पश्चिम की ओर एक बांधिल नामक देश है। उसमें एक विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणी में अलका नाम की सुन्दर नगरी है। उस समय राजा अतिबल वहां के शासक थे। वे वीर, पराक्रमी, यशस्वी दयालु एवं नीतिनिपुण प्रजावत्सल राजा थे। उनकी स्त्री का नाम मनोहरा था। कुछ समय बाद मनोहरा की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ। राजा अतिबल ने उसका नाम महाबल रख दिया। चतुर एवं नीतिनिपुण पुत्र को राजा ने युवराज बना दिया एवं आप बहुत निश्चिंत हो कर धर्म ध्यान करने लगे।

एक दिन निमित्त पाकर महाराज अतिबल का हृदय संसार से विरक्त हो गया। बारह भावनाओं का चिन्तन कर उन्होंने जिनदीक्षा धारण करने का निश्चय कर लिया। फिर मंत्री सामन्त आदि से विचार प्रकट किया।

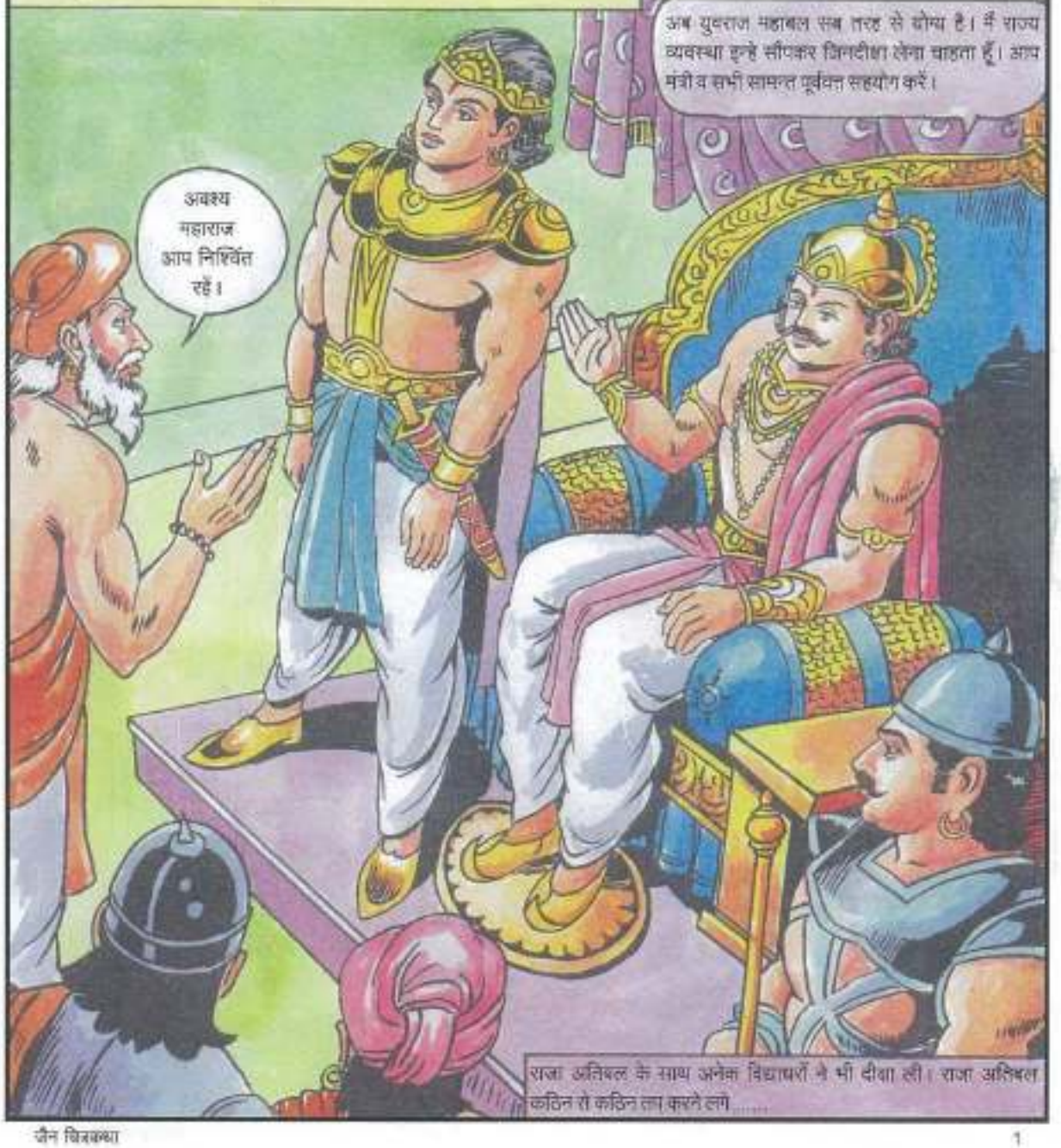

राजा अतिबल के साथ अनेक विद्याधरों ने भी दीक्षा ली। राजा अतिबल कठिन से कठिन तप करने लगे.....

इधर राजा महाबल भी नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।
महाराज आपकी शासन प्रणाली अद्भुत है। हम सब नगरवासी मुग्धचित्त से आपका अभिनन्दन करते हैं।
उसके शरीर की शोभा बड़ी ही विचित्र हो गयी थी उसका सुन्दर रूप देखकर स्त्रियों का मन काम से आकुल हो उठता था।
हमारे राज कुमार कामदेव के समान है।
हमारी राजकुमारी भी कम नहीं है।
योग्य विद्याधर कन्याओं के साथ उसका विवाह हो गया था।
राजा महाबल जो भी कार्य करता था, वह मन्त्रियों की सलाह से ही करता था। उनमें स्वयंबुद्ध को छोड़कर बाकी तीन मंत्री मिथ्या दृष्टि थे। इसलिए वे राजा महाबल व स्वयंबुद्ध के साथ धार्मिक विषयों में विद्वेष रखा करते थे। पर राजा महाबल को राजनीति में कोई बाधा नहीं आती थी। किसी समय अलकापुरी में राजा महाबल की वर्षगांठ का उत्सव मनाया जा रहा था।
स्वर्ग-मोक्ष ये कल्पित बातें है। इनमें कोई सचाई नहीं है।
जीव-अजीव कुछ नहीं होता सब कुछ प्रकृति से बनता है।

स्वयंबुद्ध ने जीव अजीव आदि तत्वों का समर्थन किया स्वर्ग मोक्ष आदि पर लोक का अस्तित्व सिद्ध कर दिखलाया।

इसी समय स्वयंबुद्ध ने पाप एवं धर्म का फल बतलाते हुए राजा महाबल को लक्ष्य कर चार कथाएं कहीं जो इस प्रकार है।

कुछ समय पहले आपके निर्मलदेश में अरविन्द नाम के एक राजा हो गये हैं। उनकी रानी का नाम विजयादेवी था। उनके दो पुत्र थे हरिचन्द और कलविन्द। दोनो पुत्र बहुत विद्वान थे। राजा अरविन्द दीर्घ संसारी जीव थे इसलिए उनका चित्त सतत पाप कर्मों में लगा रहता था। इसी के फल स्वरूप वे नरक आयु का बंध कर चुके थे। आयु के अंत में राजा अरविन्द को दाह ज्वर हो गया।

उन्होंने उत्तर कुरु क्षेत्र के सुहावने बाग में घूमना चाहा, पाप के उदय से उनकी समस्त विद्यायें नष्ट हो गयी थी। उन्हें विवश हो कर रुक जाना पड़ा। बड़े पुत्र हरिचन्द ने अपनी विद्या से उन्हें उत्तर कुरु भेजना चाहा।

राजा अरविन्द हताश होकर शैया पर पड़े रहे।

एक दिन की घटना है दीवाल पर दो छिपकली लड़ रही थी। लड़ते-लड़ते एक की पूंछ टूट गई, जिसमें खून की दो चार बूंदे अरविन्द के शरीर पर पड़ी। खून की बूंदों के पड़ते ही उन्हें कुछ शान्ति मालूम हुई, इसलिए उन्होंने समझा कि यदि वे खून की बावड़ी में नहायेंगे तो उनका रोग दूर हो सकता है। यह विचार कर लघु पुत्र कुलविन्द से खून की बावड़ी बनवाने के लिए कहा। वह पिता का आज्ञाकारी था, उससे अधिक धर्मात्मा था। उसने बावड़ी बनवाई पर उसे लाख के रंग से भरवाती। खून की बावड़ी देखकर राजा बहुत खुश हुए। नहाने के लिए उसमें प्रवेश किया। ज्योंही कुल्ला किया त्यों ही पता चला ये तो लाख का रंग है। इस कार्य पर राजा को इतना क्रोध आया कि वे तलवार लेकर कुलविन्द को मारने के लिए दौड़े, पर बीमारी के कारन अधिक नहीं दौड़ सके एवं बीच में ही अपनी तलवार की धार पर गिर पड़े। फलस्वरूप उनका उदर विदीर्ण हो गया वे मरकर नरक गति में पहुंचे। सच है मरते समय जैसे भाव होते हैं वैसी ही गति होती है।

हे नरेन्द्र! कुछ समय पूर्व आपके इसी वंश में दण्ड नाम के राजा हो गये हैं, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रम से समस्त विद्याधरों को वश में कर लिया था। यद्यपि राजा दण्ड शरीर से वृद्ध हो गये थे तथापि उनका मन वृद्ध नहीं हुआ था। उनके मणिमाली नाम का आज्ञाकारी पुत्र था। पुत्र को राज्य का भार सौंपकर स्वयं अन्तःपुर में ही रहने लगे एवं अनेक तरह के भोग भोगने लगे। किसी संक्लेश भाव से राजा दण्ड का मरण हो गया।

मर कर वे अपने भण्डार में विशालकाय अजगर हुए। वह अजगर मणिमाली के सिवाय भण्डार में किसी दूसरे को नहीं आने देता था। एक दिन मणिमाली ने इस अजगर का हाल किसी मुनिराज से कहा। मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि यह अजगर आपके पिता राजा दण्ड का जीव है। आर्तध्यान के कारण उन्हें यह कुयोनि प्राप्त हुई है। यह सुनकर मणिमाली झट से भण्डार गृह में गया एवं वहां अजगर के सामने बैठकर उसे इस ढंग से समझाने लगा, जिससे उसे अपने पूर्व भव का स्मरण हो गया एवं विषयों की लालसा छूट गई! वैरभाव छोड़ दिया अन्त में सन्यास पूर्वक मरकर देव पर्याय पाई।

अजगर ने सन्यास पूर्वक मरण से देवपर्याय पाई।

सच है विषयों की अभिलाषा से मनुष्य अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। विषयों के त्याग से स्वर्ग आदि का सुख पाते हैं।

राजन् आपके बाबा शतबल भी चिरकाल तक राज्य सुख भोगने के बाद आप के पिता राजा अतिबल को राज्य प्रदान कर धर्म-ध्यान करने लगे थे एवं आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुए थे। आपको भी ध्यान होगा कि जब हम दोनों मेरु पर्वत पर नन्दन वन में क्रीड़ारत थे। तब देव शरीरधारी आपके बाबा ने कहा था।

इसी तरह आपके पिता अतिबल के बाबा सहस्रबल भी अपने पुत्र शतबल के लिए राज्य देकर नग्न दिगम्बर मुनि हो गये थे एवं कठिन तपस्या से आत्म-शुद्धि कर शुक्ल ध्यान के प्रताप से मोक्ष स्थान को प्राप्त हुए थे।

ये कथाएं प्रायः सभी लोगों को परिचित एवं अनुभूत थी, इसलिए स्वयंबुद्ध मंत्री की बात पर किसी को अविश्वास नहीं हुआ। राजा एवं प्रजा ने स्वयंबुद्ध का खूब सत्कार किया। महामति आदि तीन मन्त्रियों के उपदेश से जो कुछ विभ्रम फैल गया था, वह स्वयंबुद्ध के उपदेश से दूर हो गया। इस तरह राजा महाबल की वर्षगांठ का उत्सव हर्षध्वनि के साथ समाप्त

एक दिन स्वयंबुद्ध मंत्री अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करने के लिए मेरु पर्वत पर गये एवं वहां समस्त चैत्यालयों के दर्शन कर अपने आप को पुण्यशाली मानते हुए सौमनस वन में बैठे ही थे कि इतने में उन्हें पूर्व विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत कच्छ देश के अनिष्ट नामक नगर से आए हुए दो मुनिराज दिखाई पड़े।

अब मैं राजा महाबल के पूर्व भव का वर्णन करता हूँ जिसमें कि इसने धर्म का बीज बोया था। पश्चिम विदेह के गन्धिल देश में सिंहपुर नगर में किसी समय राजा श्रीषेण राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुन्दरी था। उनके जय वर्मा व श्री वर्मा नाम के दो पुत्र थे। उनमें श्री वर्मा छोटा पुत्र सभी को प्यारा था। राजा ने प्रजा के आग्रह से लघु पुत्र श्रीवर्मा को राज्य दे दिया। स्वयं धर्म ध्यान में लीन हो गये। ज्येष्ठ पुत्र जयवर्मा को अपना यह अपमान सहा नहीं गया। इसलिए वह दिगम्बर मुनि बन कर उग्र तप करने लगा। एक दिन आकाश मार्ग से विहार करता हुआ विद्याधरों का राजा जा रहा था।

राजा बनने की अभिलाषा ने फिर सर दबाया। जयवर्मा राज भोगों की कल्पना से मग्न हो रहे थे। इधर सांप ने उन्हें डस लिया।

पूर्व भव की अतृप्त वासना से राजा महाबल अब भी रात दिन भोगों में लीन रहते। राजा महाबल का पूर्वभव सुनने के बाद मुनि राजा आदित्यगति ने स्वयंबुद्धि मंत्रि से कहा कि आज राजा महाबल ने स्वप्न देखा है कि मुझे सम्भिन्नमति आदि मन्त्रियों ने जबरदस्ती कीचड़ में गिरा दिया है। फिर स्वयंबुद्ध मंत्री ने उन दुष्टों को धमका कर मुझे कीचड़ से निकाल कर सोने के सिंहासन पर बैठाकर निर्मल जल से नहलाया तथा एक दीपक की शिखा प्रतिक्षण क्षीण हो रही है।

इतना बताकर दोनों मुनि विहार कर गये मंत्री नगर में लौट आया।

वहां राजा महाबल मंत्री स्वयंबुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे सो स्वयंबुद्ध ने शीघ्र ही आकर उनके दोनों स्वप्नों का फल कह सुनाया तथा उन्हें सम्यक्त्वोपयोगी अन्य भी धार्मिक उपदेश दिये। मंत्री के कहने से राजा महाबल को दृढ़ निश्चय हो गया कि उसकी आयु एक माह रह गई है। यह समय अष्टाह्निका व्रत का था, इसलिए उसने जिन मंदिर में आठ दिन का खूब उत्सव कराया एवं शेष बाइस दिन का सन्यास धारण किया। उसे सन्यास विधि मंत्री स्वयंबुद्ध बतलाते रहते थे।

अन्त में पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए राजा महाबल नश्वर मनुष्य शरीर का परित्याग कर ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में देव पर्याय का अधिकारी हुआ। वहां उसका नाम ललितांग था। जब उसने अवधि ज्ञान से पूर्व भव का चिन्तवन किया, तब उसने स्वयंबुद्ध का अत्यन्त उपकार माना एवं उसके प्रति अपने हृदय से कृतज्ञता प्रकट की। पूर्वभव के भव्य संस्कार से उसने वहां भी जिनपूजा आदि धार्मिक कार्यों में कभी प्रमाद नहीं किया। इस प्रकार ऐशान स्वर्ग में स्वयं प्रभा, कनक लता, विद्युल्लता आदि चार हजार देवियों के साथ अनेक सुख भोगते हुए रहने लगा।

ललितांग देव की आयु सुदीर्घ थी इसलिए उसके जीवन में अल्पआयु वाली कितनी ही देवियां नष्ट हो जाती थी उसके स्थान पर दूसरी देवियां उत्पन्न हो जाती थी। इस तरह सुखभोगते हुए ललितांग देव की आयु जब केवल कुछ पल्यों की शेष रह गई तब एक स्वयंप्रभा नाम की देवी प्राप्त हुई। उसके जैसी सुन्दरी देवी जीवन में पहली बार मिली थी, वह उसे बहुत चाहता था एवं वह भी ललितांग को बहुत अधिक चाहती थी। दोनों एक दूसरे पर अत्यंत मोहित थे।

परन्तु सब दिन किसी के एक से नहीं होते। धीरे-धीरे ललितांग देव की दो सागर की आयु समाप्त होने को आई। अब उसकी आयु सिर्फ छः माह की शेष रह गई तब उसके कण्ठ में पड़ी माला मुरझा गई कल्पवृक्ष कान्ति रहित हो गये। मणि, मुक्ता आदि सभी वस्तुएँ प्रायः निष्प्रभ सी हो गई।

अब तो लगता है मेरी आयु मात्र छः माह की शेष रह गयी है। इसके बाद मुझे अवश्य ही नरलोक में उत्पन्न होना पड़ेगा। प्राणी जैसे कार्य करते हैं, वैसे ही फल पाते हैं। मैंने अपना समस्त जीवन भोग विलासों में बिता दिया। अब कम से कम इस शेष आयु में मुझे धर्म साधन करना परम आवश्यक है।

यह चिन्तवन कर पहले ललितांगदेव ने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना की, फिर अच्युत स्वर्ग में स्थित जिन प्रतिमाओं की पूजा करता हुआ समता सन्तोष से वह समय बिताने लगा अन्त में समाधिपूर्वक पंचनमस्कार मंत्र का जाप करते हुए उसने देव शरीर को त्याग दिया।

जम्बुद्वीप के विदेह क्षेत्र में एक पुष्कलावती देश है। उसकी राजधानी उत्पल खेट नगरी है। वहां के राजा वज्रबाहु थे उनकी रानी का नाम वसुन्धरा था। वही ललितांग देव अपनी आयु समाप्त होने पर इन्हीं दम्पति का वज्रजंघ नाम का पुत्र हुआ वह अपनी मनोरम चेष्टाओं से सभी को हर्षित करता था।
चन्द्रमा जिस तरह कुमुदों को विकसित करता है उसी तरह यह बालक सबको हर्षित करता है।
जम्बु द्वीप पूर्व विदेह क्षेत्र में पुण्डरीकणी नगरी के राजा वज्रदत्त व उनकी रानी लक्ष्मीमती के श्रीमती नामकी पुत्री हुई।
श्रीमती बहुत सुन्दर है इसे ब्रह्मा ने चन्द्रमा की कलाओं से बनाया है।
उधर राजा की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ तथा नगर के बाहर उद्यान में यशोधर महामुनि को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। राजा वज्रदंत महामुनि के ज्ञानोत्सव में शामिल हुए। ज्योंहि उन्होंने मुनिराज के चरणों में प्रणाम किया उन्हें अवधिज्ञान हो गया इससे राजा ने अपने व पुत्री आदि के पूर्वभव स्पष्ट रूप से जान लिए। निश्चिन्त हो कर दिग्विजय के लिए निकल पड़े। इधर पंडितधाय श्रीमती का मन बहलाने लगी। उसने उसे मुर्छित होने का कारण पूछा। मुझे पूर्व भव के पति ललितांगदेव का स्मरण हो आया है।
अब ललितांगदेव के बिना मुझे एक क्षण भी वर्ष के समान प्रतीत होता है। तुम उसकी खोज करके मुझे मिलादो। देखो मैंने इस पटिये पर पूर्वभव के चित्र अंकित किये हैं। इन्हें दिखाकर तुम सरलता से ललितांग देव की खोज कर सकती हो।

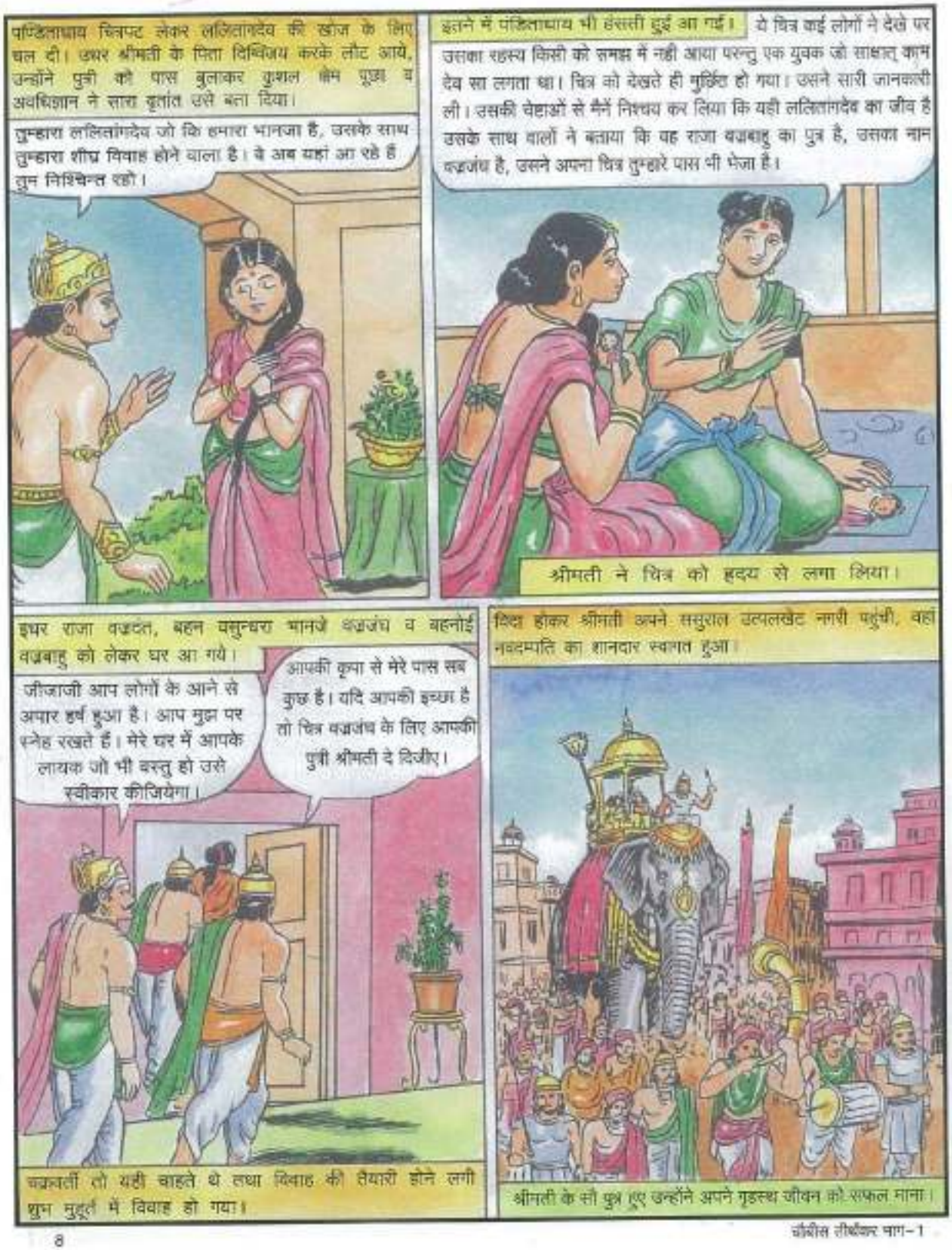
पण्डिताचार्य चित्रपट लेकर ललितांगदेव की खोज के लिए चल दी। उधर श्रीमती के पिता दिग्विजय करके लौट आये, उन्होंने पुत्री को पास बुलाकर कुशल क्षेम पूछा व अवधिज्ञान ने सारा वृतांत उसे बता दिया।
तुम्हारा ललितांगदेव जो कि हमारा भानजा है, उसके साथ तुम्हारा शीघ्र विवाह होने वाला है। वे अब यहां आ रहे हैं तुम निश्चिन्त रहो।
इतने में पंडिताचार्य भी हंसती हुई आ गई। ये चित्र कई लोगों ने देखे पर उसका रहस्य किसी को समझ में नहीं आया परन्तु एक युवक जो साक्षात् काम देव सा लगता था। चित्र को देखते ही मुर्छित हो गया। उसने सारी जानकारी ली। उसकी चेष्टाओं से मैंने निश्चय कर लिया कि यही ललितांगदेव का जीव है उसके साथ वालों ने बताया कि वह राजा वज्रबाहु का पुत्र है, उसका नाम वज्रजंघ है, उसने अपना चित्र तुम्हारे पास भी भेजा है।
श्रीमती ने चित्र को हृदय से लगा लिया।
इधर राजा वज्रदंत, बहन वसुन्धरा भानजे वज्रजंघ व बहनोई वज्रबाहु को लेकर घर आ गये।
जीजाजी आप लोगों के आने से अपार हर्ष हुआ है। आप मुझ पर स्नेह रखते हैं। मेरे घर में आपके लायक जो भी वस्तु हो उसे स्वीकार कीजियेगा।
आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ है। यदि आपकी इच्छा है तो चित्र वज्रजंघ के लिए आपकी पुत्री श्रीमती दे दीजीए।
वज्रवर्ती तो यही चाहते थे तथा विवाह की तैयारी होने लगी शुभ मुहूर्त में विवाह हो गया।
विदा होकर श्रीमती अपने ससुराल उत्पलखेट नगरी पहुंची, वहां नवदम्पति का शानदार स्वागत हुआ।
श्रीमती के सौ पुत्र हुए उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन को सफल माना।

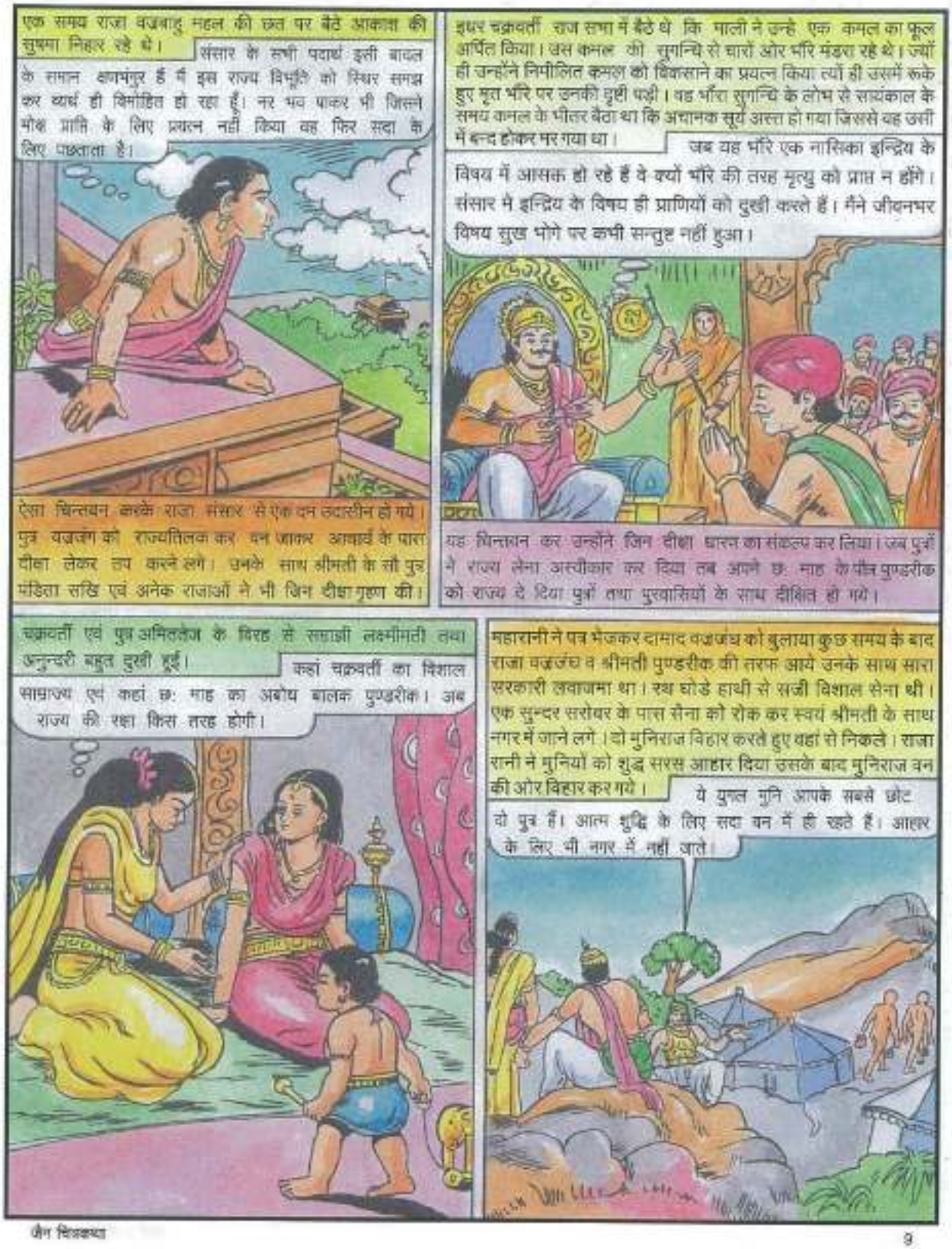
एक समय राजा वज्रबाहु महल की छत पर बैठे आकाश की सुषमा निहार रहे थे।
संसार के सभी पदार्थ इसी बादल के समान क्षणभंगुर हैं मैं इस राज्य विभूति को स्थिर समझ कर व्यर्थ ही विमोहित हो रहा हूँ। नर भव पाकर भी जिसने मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं किया वह फिर सदा के लिए पछताता है।
ऐसा चिन्तवन करके राजा संसार से एक दम उदासीन हो गये। पुत्र वज्रजंघ को राज्यतिलक कर वन जाकर आचार्य के पास दीक्षा लेकर तप करने लगे। उनके साथ श्रीमती के सौ पुत्र पंडिता सखि एवं अनेक राजाओं ने भी जिन दीक्षा ग्रहण की।
इधर चक्रवर्ती राज सभा में बैठे थे कि माली ने उन्हें एक कमल का फूल अर्पित किया। उस कमल की सुगन्धि से चारों ओर भौंरे मंडरा रहे थे। ज्यों ही उन्होंने निमीलित कमल को विकसाने का प्रयत्न किया त्यों ही उसमें रुके हुए मृत भौंरे पर उनकी दृष्टी पड़ी। वह भौंरा सुगन्धि के लोभ से सायंकाल के समय कमल के भीतर बैठा था कि अचानक सूर्य अस्त हो गया जिससे वह उसी में बन्द होकर मर गया था।
जब यह भौंरे एक नासिका इन्द्रिय के विषय में आसक्त हो रहे हैं वे क्यों भौंरे की तरह मृत्यु को प्राप्त न होंगे। संसार में इन्द्रिय के विषय ही प्राणियों को दुखी करते हैं। मैंने जीवनभर विषय सुख भोगे पर कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ।
यह चिन्तवन कर उन्होंने जिन दीक्षा धारण का संकल्प कर लिया। जब पुत्रों ने राज्य लेना अस्वीकार कर दिया तब अपने छः माह के पौत्र पुण्डरीक को राज्य दे दिया पुत्रों तथा पुरवासियों के साथ दीक्षित हो गये।
चक्रवर्ती एवं पुत्र अमिततेज के विरह से महाराजी लक्ष्मीमती तथा अनुन्दरी बहुत दुखी हुई।
कहां चक्रवर्ती का विशाल साम्राज्य एवं कहां छः माह का अबोध बालक पुण्डरीक। अब राज्य की रक्षा किस तरह होगी।
महारानी ने पत्र भेजकर दामाद वज्रजंघ को बुलाया कुछ समय के बाद राजा वज्रजंघ व श्रीमती पुण्डरीक की तरफ आये उनके साथ सारा सरकारी लवाजमा था। रथ घोड़े हाथी से सजी विशाल सेना थी। एक सुन्दर सरोवर के पास सेना को रोक कर स्वयं श्रीमती के साथ नगर में जाने लगे। दो मुनिराज विहार करते हुए वहां से निकले। राजा रानी ने मुनियों को शुद्ध सरस आहार दिया उसके बाद मुनिराज वन की ओर विहार कर गये।
ये युगल मुनि आपके सबसे छोटे दो पुत्र हैं। आत्म शुद्धि के लिए सदा वन में ही रहते हैं। आहार के लिए भी नगर में नहीं जाते।

यह सुन राजा वज्रजंघ व श्रीमती को रोमांच हो आया। वे तत्क्षण उसी ओर गये जिस ओर मुनिराज गये थे। निर्जन वन में एक शिला पर बैठे हुए मुनि युगल को देखकर राज दम्पति के हर्ष का पार न रहा। मुनिराजों के चरणों में मस्तक नवाकर गृहस्थ धर्म का आख्यान सुना इसके बाद अपना पूर्व भव सुनकर राजा वज्रजंघ ने पूछा .....

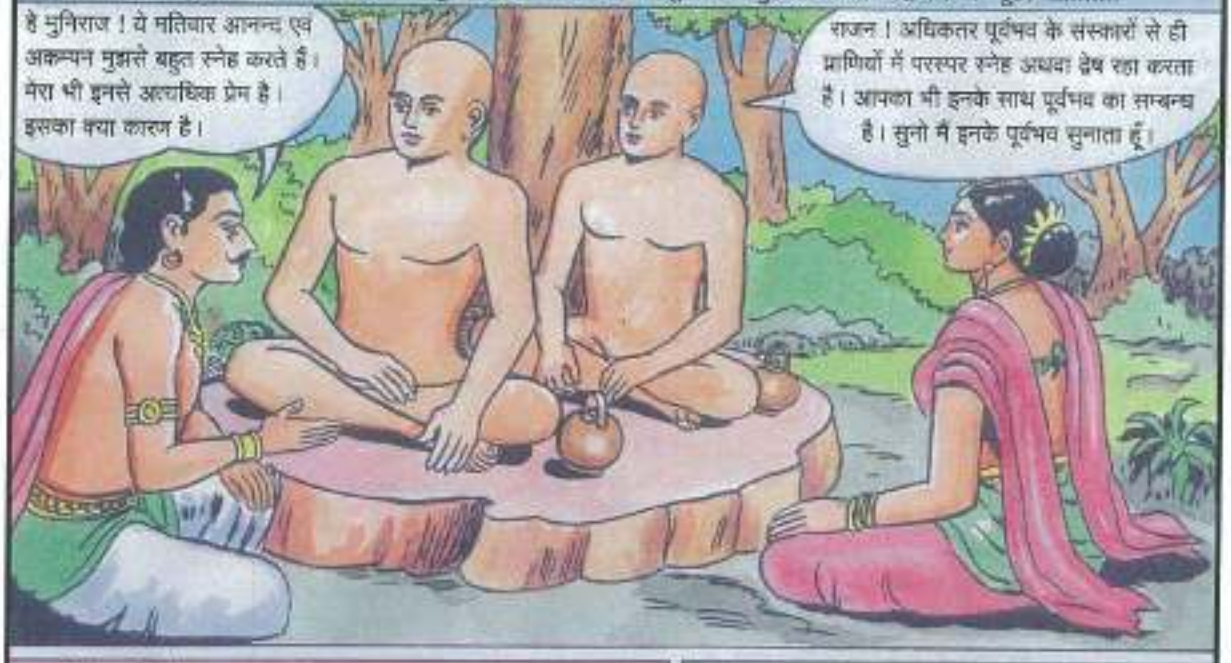

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र वत्सकावती देश में प्रभाकरी नगर है। वहां का राजा नरपाल आरम्भ परिग्रह में लीन रहता था। इसलिए वह मरकर पंकप्रभा नरक में गया। अनेक दुख भोगकर उसी नगरी के पास शार्दूल (व्याघ्र) हुआ। किसी समय उस पर्वत पर वहां के तात्कालिक राजा प्रितीवर्धन अपने छोटे भाई के साथ रुके हुए थे। राजपुरोहित ने उनसे कहा –

राजा प्रीतीवर्धन ने पुरोहित के कहे अनुसार ऐसा ही किया। जिससे पहितास्य नामक मुनि नगरी को विहार के अयोग्य समझकर उसी पर्वत की ओर आ गये।

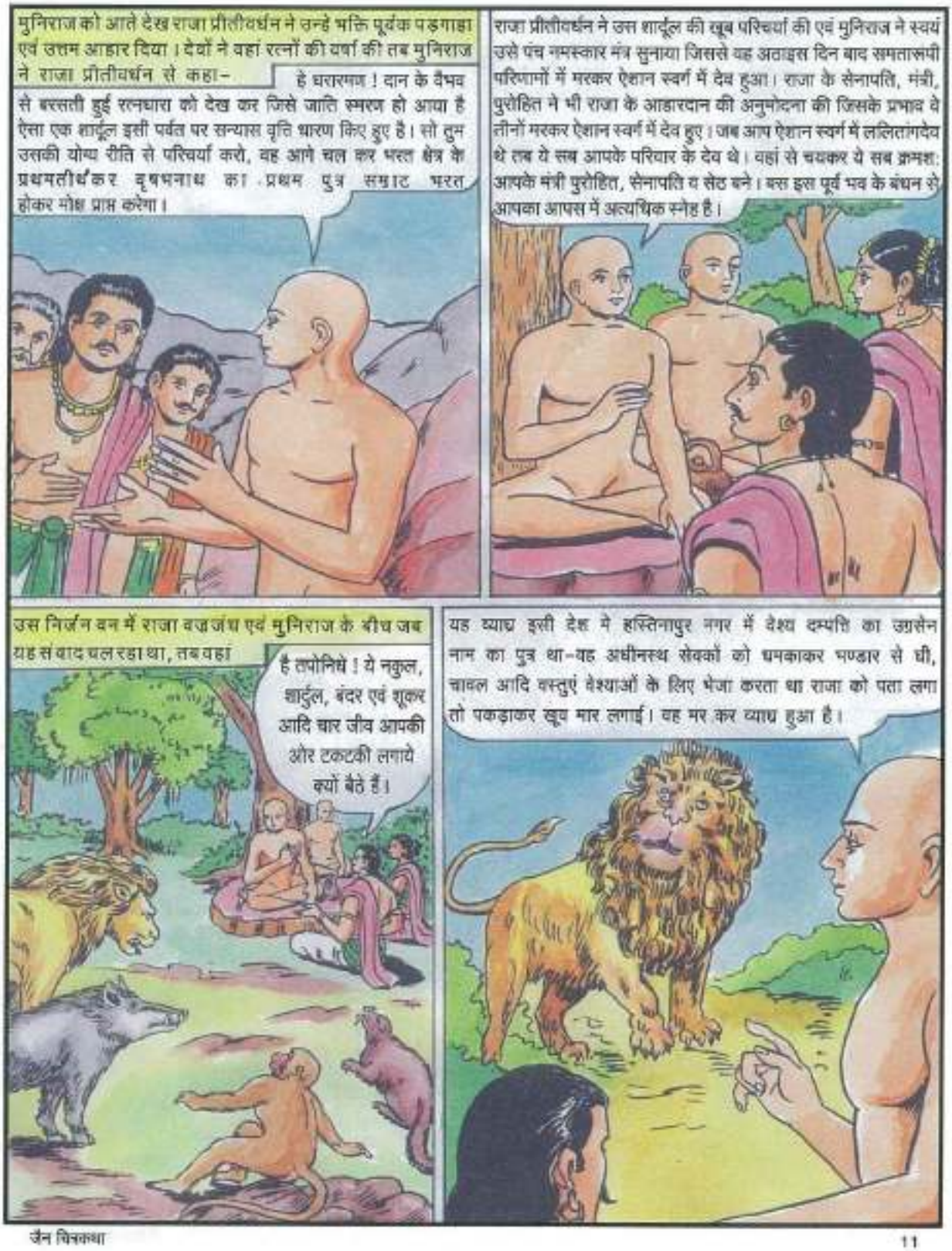
मुनिराज को आते देख राजा प्रीतीवर्धन ने उन्हें भक्ति पूर्वक पड़गाहा एवं उत्तम आहार दिया। देवों ने वहां रत्नों की वर्षा की तब मुनिराज ने राजा प्रीतीवर्धन से कहा-
हे धरारमण ! दान के वैभव से बरसती हुई रत्नधारा को देख कर जिसे जाति स्मरण हो आया है ऐसा एक शार्दूल इसी पर्वत पर सन्यास वृत्ति धारण किए हुए है। सो तुम उसकी योग्य रीति से परिचर्या करो, वह आगे चल कर भरत क्षेत्र के प्रथमतीर्थंकर वृषभनाथ का प्रथम पुत्र सम्राट भरत होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।
राजा प्रीतीवर्धन ने उस शार्दूल की खूब परिचर्या की एवं मुनिराज ने स्वयं उसे पंच नमस्कार मंत्र सुनाया जिससे वह अठाइस दिन बाद समतारूपी परिणामों में मरकर ऐशान स्वर्ग में देव हुआ। राजा के सेनापति, मंत्री, पुरोहित ने भी राजा के आहारदान की अनुमोदना की जिसके प्रभाव वे तीनों मरकर ऐशान स्वर्ग में देव हुए। जब आप ऐशान स्वर्ग में ललितांगदेव थे तब ये सब आपके परिवार के देव थे। वहां से चयकर ये सब क्रमशः आपके मंत्री पुरोहित, सेनापति व सेठ बने। बस इस पूर्व भव के बंधन से आपका आपस में अत्यधिक स्नेह है।
उस निर्जन वन में राजा वज्रजंघ एवं मुनिराज के बीच जब यह संवाद चल रहा था, तब वहां
हे तपोनिधे ! ये नकुल, शार्दुल, बंदर एवं शूकर आदि चार जीव आपकी ओर टकटकी लगाये क्यों बैठे हैं।
यह व्याघ्र इसी देश में हस्तिनापुर नगर में वैश्य दम्पत्ति का उग्रसेन नाम का पुत्र था-वह अधीनस्थ सेवकों को धमकाकर भण्डार से घी, चावल आदि वस्तुएं वेश्याओं के लिए भेजा करता था राजा को पता लगा तो पकड़ाकर खूब मार लगाई। वह मर कर व्याघ्र हुआ है।

यह सूकर पूर्व भव में विजयनगर के राजा दम्पति का हरिवाहन नामक पुत्र था। वह बहुत अभिमानी था। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। यहां तक की पिता एवं गुरुजनों तक की आज्ञा नहीं मानता था। एक दिन इसके पिता ने इसे कुछ आज्ञा दी जिससे क्रुध होकर इसने पत्थर के खम्भे से सिर फोड़ लिया मरकर सूकर हुआ।

यह बंदर पहले भव में वैश्य दम्पति नागदत्त नामक पुत्र था। किसी समय इसकी माँ ने छोटी कन्या के विवाह के लिए दुकान से कुछ धन ले लिया। जिसे यह देना नहीं चाहता था। इसने माँ से धन वापस लेने के अनेक उपाय किये। निष्फल रहा, इस दुख से मरकर बंदर हुआ।

यह नेवला पहले भव में सुप्रतिष्ठित नगर में कादम्बिक नाम का पुरुष था। वहां के राजा ने इसे मंदिर बनवाने के काम में लगा रखा था। यह ईंट वाले लोगों को धन देकर बहुत सी ईंटें अपने घर ढलवाता था। कादम्बिक को एक दिन अपनी कन्या के ससुराल जाना पड़ा। अपने पुत्र को मंदिर के काम पर लगा गया था। पुत्र ने उसका बताया काम नहीं किया। उसने बेटे को बहुत पीटा। क्रोध में आकर अपने पांव भी काट लिए राजा को पता चला तो उसकी बहुत पिटाई हुई, वह मरकर नेवला हुआ।

आपने जो मुझे आहार दिया है, उसका वैभव देखने से इन सब को अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया। ये पश्चाताप कर रहे हैं। पात्रदान की अनुमोदना से इनका पुण्य संचय हुआ है। ये सब आठभवों तक आपके साथ स्वर्ग एवं मनुष्यों के सुख भोग कर संसार बंधन से मुक्त हो जायेंगे। साथ ही इस श्रीमती का जीव आपके तीर्थ में दानतीर्थ के चलाने वाला श्रेयांसकुमार होगा तथा उसी पर्याय से मोक्ष प्राप्त करेगी।

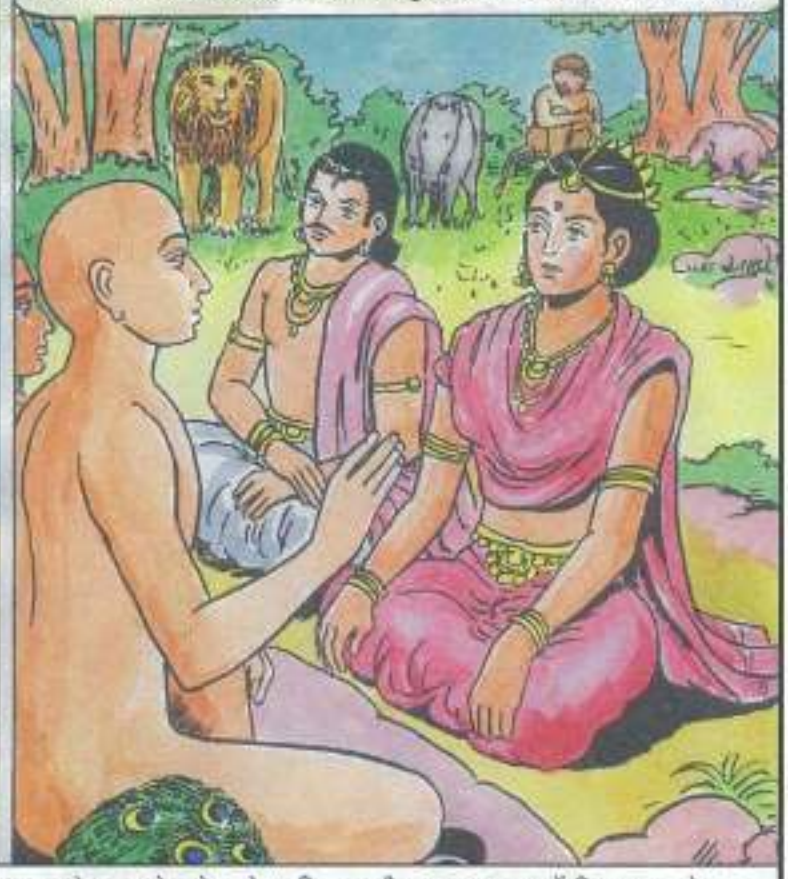

दोनों राजदम्पति मुनिराज को नमस्कार कर अपने नगर को चले आये। मुनियुगल भी अनन्त आकाश में विहार कर गये।

अपनी राजधानी पुण्डरीकिणीपुरी आकर बालपुण्डरीक का राजतिलक किया विश्वस्त वृद्ध मंत्रियों के साथ में राज्य का भार सौंप दिया। एक दिन राजा रानी शयनागार में सोये थे। चन्दन आदि का सुगन्धित धुंआ फैल रहा था। दुर्भाग्य से सेवक महल की खिड़कियां खोलना भूल गया। जिससे धुंआ संचित होता रहा। उसी धुंए से राजदम्पति का श्वास रुक गया, सदा के लिए सोते रह गये। वे दोनों मरकर उत्तर कुरुक्षेत्र में आर्य एवं आर्या हुए। वे नकुल, व्याघ्र, सूकर एव बंदर भी उसी क्षेत्र में आये हुए थे। सुख से रहने लगे। इधर उत्पल खेट नगर मे राजा वज्रजंघ के विरह से मतिवर, आनन्द, धनमित्र एवं अकम्पन पहले तो दुखी हुए अन्त में जिन दीक्षा धारण करली। तप के प्रभाव से स्वर्ग में अहमिन्द्र हुए। एक दिन उत्तर कुरुक्षेत्र में आर्य एवं आर्या कल्पवृक्ष के नीचे बैठे क्रीड़ा कर रहे थे आकाश मार्ग से दो मुनि राज पधारे। आर्य दम्पति ने उनका स्वागत किया चरणों में नमस्कार कर पूछा –

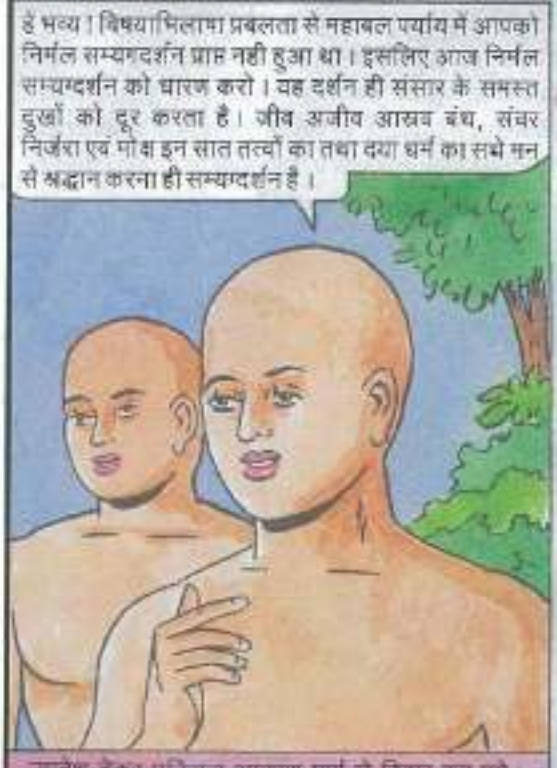

उपदेश देकर मुनिराज आकाश मार्ग से विहार कर गये।

कुछ समय बाद आयु पूर्ण होने पर आर्य एवं आर्या के जीव ऐशान स्वर्ग में देव हुए। शार्दूल, सूकर, बंदर व नेवले के जीव भी उसी स्वर्ग में देव हुए। वहां अनेक भोग भोगते हुए सुख से रहने लगे। काल क्रम से स्वयं बुद्ध मंत्री के जीव प्रीतिंकर मुनिराज को श्री प्रभ पर्वत पर केवल ज्ञान हुआ। सभी देव उनकी वंदना के लिए गये। देव ने अपने गुरु से पूछा।

यह सुन कर श्रीधर देव को बहुत दुख हुआ। वह सम्भिन्नमति तथा महामति के विषय में तो कर ही क्या सकता था हां शतमति को सुधार सकता था। वह शीघ्र ही दूसरे नरक में गया। वहां अवधिज्ञान से शतमति मंत्री के जीव को पहचान कर उससे कहा–

श्रीधर देव के उपदेश से नारकी शतमति ने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण कर लिया। वह आयु पूर्ण कर मंगलावती देश में राजदम्पति के जयसेन नाम का पुत्र हुआ।

जिस समय जयसेन का विवाह होने वाला था। उसी समय श्रीधर देव ने जाकर समझाया। नरक के समस्त दुखों की याद दिलाई। जिससे उसने संसार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा ले ली। कठिन तप के प्रभाव से मरकर पांचवे स्वर्ग में ब्रह्मेन्द्र हुआ।

कुछ समय बाद श्रीधरदेव स्वर्ग से चयकर जम्बूद्वीप के महाकच्छकावती देश के राजदम्पति के सुविधि नामक पुत्र हुए। अभय घोष चक्रवर्ती उसके नाना थे। चक्रवर्ती के मनोहरा नाम की एक सुन्दर कन्या थी, जिसका विवाह सुविधि से हुआ। सुख से समय बिताने लगे। कुछ समय बाद राज्य का भार सुविधि को सौंप कर राजा मुनि हो गये। सुविधि राजकार्य में बहुत अधिक कुशल था। समय पाकर राजा सुविधि के केशव नामक पुत्र हुआ। राजा वज्रजंघ का जीव अनेक सुख भोगकर राजा सुविधि हुआ। श्रीमती का जीव उनका पुत्र केशव हुआ। शार्दूल का जीव इसी देश के राजा विभीषण व रानी प्रियदत्ता का वरदत्त नाम का पुत्र हुआ। सूकर का जीव अनन्त मति व नन्दिसेन राज दम्पति का वरसेन नाम का पुत्र हुआ। बंदर का जीव चन्द्रमती व रतिसेन नामक राजदम्पति के चित्रांगद नाम का पुत्र हुआ। नकुल का जीव चित्रमलिनी तथा प्रभन्जन नामक राजदम्पति के मदन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ।

कुछ समय के बाद चक्रवर्ती अजयघोष ने अठारह हजार राजाओं के साथ जिनदीक्षा ले ली। वरदत्त, वरसेन, चित्रांगद तथा मदन भी चक्रवर्ती के साथ दीक्षित हो गये। राजा सुविधि का अपने पुत्र केशव पर अधिक स्नेह था। इसलिए उन्होंने मुनि न होकर श्रावक के व्रत धारण किये। आयु के अन्त में महाव्रत धारण कर सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुए। केशव ने भी दीक्षा ली, आयु के अन्त में स्वर्ग में यतीन्द्र हुआ। आयु के अन्त में अच्युतेन्द्र पुण्डरीकणी नगरी के श्रीकान्त तथा वज्रसेन नामक राजदम्पति के पुत्र हुआ। बड़ा उसका नाम वज्रनाभि था। वरदत्त, वरसेन, चित्रांगदा तथा मदन स्वर्ग में सामानिक देव थे। वहां से चयकर वज्रनाभिके विजय वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित नाम के छोटे भाई हुए। जो सोलहवें स्वर्ग में यतीन्द्र हुआ। वह कुबेरदत्त तथा अनन्तमति नामक वैश्य दम्पति के धनदेव नामक पुत्र हुआ। वज्रनाभिके वज्रजंघ भव में जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र तथा अकम्पन नाम के मंत्री पुरोहित सेठ तथा सेनापति थे। वे मरकर अहमिन्द्र हुए थे। अब वे यहां से चयकर वज्रनाभिके भाई हुए। वहां उसके सुबाहु, महाबाहु पीठ तथा महापीठ नाम रखे गये थे। राजपुत्र वज्रनाभि का शरीर पहले से ही बहुत सुन्दर था। यौवनावस्था आने पर अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होने लगा। राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र वज्रनाभि को राज्यभार सौंपकर वैराग्य ले लिया। इधर वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ। चक्ररत्न को आगेकर वज्रनाभि ने दिग्विजय की। धनदेव उसका गृहपति नामक रत्न हुआ इस तरह नौ निधि तथा चौदह रत्नों के स्वामी सम्राट वज्रनाभि का समय सुख से बीतने लगा।

महाराज वज्रनाभि अपने पुत्र वज्रदंत को राज्यभार सौंपकर सोलह हजार राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों तथा श्रेष्ठी धनदेव के साथ तीर्थंकर देव के समीप दीक्षित होकर तपस्या करने लगे। वज्रनाभि ने भी वहीं सोलह भावनाओं का चिन्तन किया जिससे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो गया। आयु के अन्त में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए। यह अहमिन्द्र ही हमारे कथा नायक वृषभनाथ होंगे। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सुबाहु, पीठ, महापीठ तथा धनदेव शरीर त्याग कर अहमिन्द्र हुए थे, भगवान वृषभनाथ के साथ मोक्ष प्राप्त करेंगे।.....

यहां जब भोगभूमि की रचना मिट चुकी थी एवं कर्मभूमि की रचना आरंभ हो रही थी, तब अयोध्या नगरी में अन्तिम कुलकर नाभिराज का जन्म हुआ था। इनके बाल में जन्म के समय बालक की नाभि में नाल दिखलाई देने लगी थी। महाराज नाभिराज ने उस नाल को काटने का उपाय बताया था। इसलिए उनका नाम नाभिराज सार्थक हुआ था। इन्हीं के समय में आकाश में श्यामल मेघ दिखने लगे थे। इन्द्रधनुष की विचित्र आभा छिटकने लगी थी। विद्युत चमकती थी। वर्षा होने से पृथ्वी की शोभा अद्भुत हो गयी थी। कहीं सुन्दर निर्झर कलरव करते हुए बहने लगते थे। कहीं पहाड़ों की गुफाओं से इठलाती हुई नदियां बहने लगी थीं। कहीं मेघों की गर्जन सुनकर वनों में मयूर नाचने लगे थे। आकाश में श्वेत बगुले उड़ने लगे थे। समस्त पृथ्वी पर हरी भरी घास उत्पन्न हो गई थी। उस वर्षा से खेतों में अपने आप तरह-तरह के धान्य अंकुर उत्पन्न हो कर समय पर योग्य फल देने लगे थे। यद्यपि भोग उपभोग की समस्त सामग्री मौजूद थी परन्तु प्रजा उसे काम में लाना नहीं जानती थी इसलिए वह यह सब देखकर भ्रम में पड़ गई। अब तक भोग भूमि बिलकुल मिट चुकी थी एवं कर्मयुग का आरंभ हो चुका था परन्तु लोग कर्म करना नहीं जानते थे, इसलिए वे भूख-प्यास से दुखी होने लगे। एक दिन चिन्ता से व्याकुल हुए समस्त प्राणी महाराज नाभिराज के पास पहुंचे एवं उनसे दीनता पूर्वक प्रार्थना करने लगे।

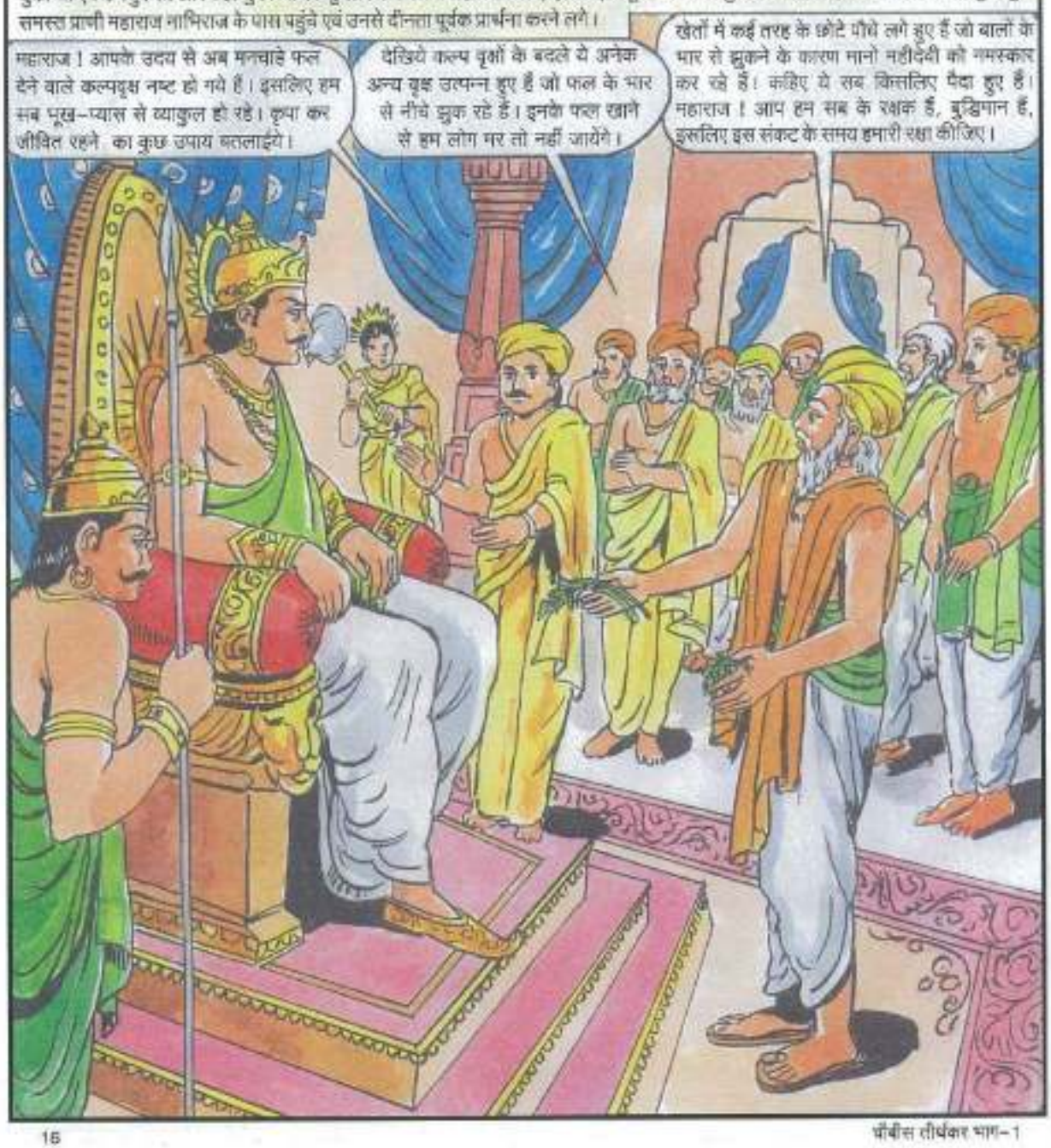

प्रजा के ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर नाभिराज ने मधुर वचनो से सबको संतोष दिलाया एवं युग के परिवर्तन का हाल बताते हुए कहा।

भाईयों ! कल्पवृक्ष के नष्ट हो जाने पर ये साधारण वृक्ष तुम्हारा वैसा ही उपकार करेंगे जैसा कि पहले कल्पवृक्ष किया करते थे। देखो ये खेतों में अनेक तरह के अनाज पैदा हुए हैं। इनके खाने से तुम लोगों की भूख शान्त हो जावेगी एवं इन सुन्दर कुए, बावड़ी, निर्झर आदि का पानी पीने से तुम्हारी प्यास मिट जावेगी।

ये लम्बे गन्ने के पेड़, जो बहुत अधिक मीठे हैं। इन्हें दान्तों से या यन्त्र से पेलकर इनका रस पीना चाहिए। इन गायों,भैंसों के थनों से श्वेत मिष्ट दुग्ध झर रहा है, इसे पीने से शरीर पुष्ट होता है एवं भूख मिट जाती है।

इस तरह दयालु महाराज नाभिराज ने उस दिन प्रजा को जीवित रहने के सब उपाय बताये एवं थाली आदि कई तरह के मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाये। उनके मुख से यह सब सुन कर प्रजाजन बहुत अधिक प्रसन्न हुए एवं उनके बताये उपायों को काम में लाकर सुख से रहने लगे।

पहिले लोग बहुत अधिक भद्र परिणामी होते थे, इसलिए उनसे किसी प्रकार का अपराध नहीं होता था। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों लोगों के परिणाम कुटिल होते गये एवं वे अपराध करने लगे। इसलिए नाभिराज ने एवं उनके पहिले कुलकरों ने अपराधी मनुष्यों को दण्ड देने के लिए दण्ड विधान भी चलाया था। 'हा', 'मा', 'धिक' ये तीन प्रकार के दण्ड थे।

राजा नाभिराज की पत्नी का नाम मरुदेवी था। उसके समान सुन्दरी एवं सदाचारणी न हुई और न होगी। उनकी राजधानी अयोध्यापुरी थी। राजदम्पति अनेक प्रकार के सुख भोगते हुए बड़े आनन्द से वहां रहते थे। नये-नये उपायों से प्रजा का पालन करते थे। इन्हीं राजदम्पति के पुत्र भगवान श्री वृषभनाथ से प्रसिद्ध हुए। भगवान वृषभनाथ प्रथम आदितीर्थंकर कहलाते थे।

जब से कर्मयुग का आरम्भ हुआ तब से लोगों के हृदय भोग लालसाओं से बहुत कुछ विरक्त हो चुके थे। उस समय संसार को ऐसे देव दूत की आवश्यकता थी। जो सृष्टी के अव्यवस्थित लोगों को व्यवस्थित बनाए। उन्हें कर्तव्य का ज्ञान कराए, ये महान कार्य किसी साधारन मनुष्य से नही हो सकता था। उसके लिए तो किसी ऐसे महात्मा की आवश्यकता थी जिसका व्यक्तित्व बहुत विशाल हो। हृदय अत्यन्त निर्मल एवं उदार हो। उस समय वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव जो कि सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र पद पर आसीन था। इस महान कार्य के लिए उद्यत हुआ। देवताओं ने उसका सहर्ष अभिवादन किया। सबसे पहले देवों ने भव्यता से स्वागत के लिए भव्य नगरी का निर्माण किया फिर उसमें नित्य प्रतिदिन में चार बार करोड़ों रत्नों की वर्षा की। एक दिन महारानी मरूदेवी स्वच्छ वस्त्र से शोभित शैया पर शयन कर रही थी। शीतल सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही थी। सुख की नींद आ रही थी। जब रात्रि समाप्त प्राय थी तब उसने आकाश में सोलह स्वप्न देखे। स्वप्न देखने के बाद उसने अपने मुख में प्रवेश करते हुए श्वेत वर्ण वाला एक बैल देखा।....

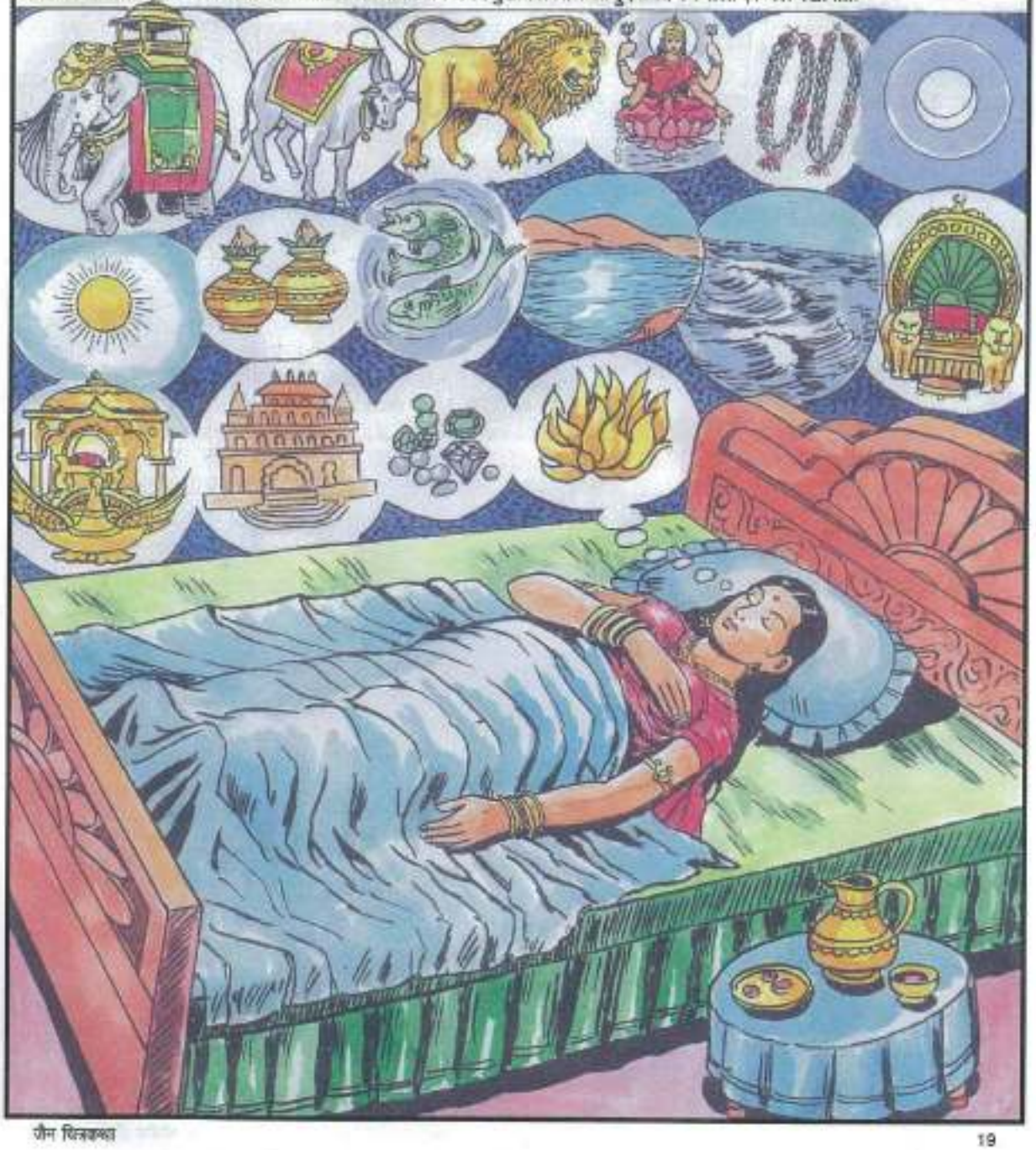

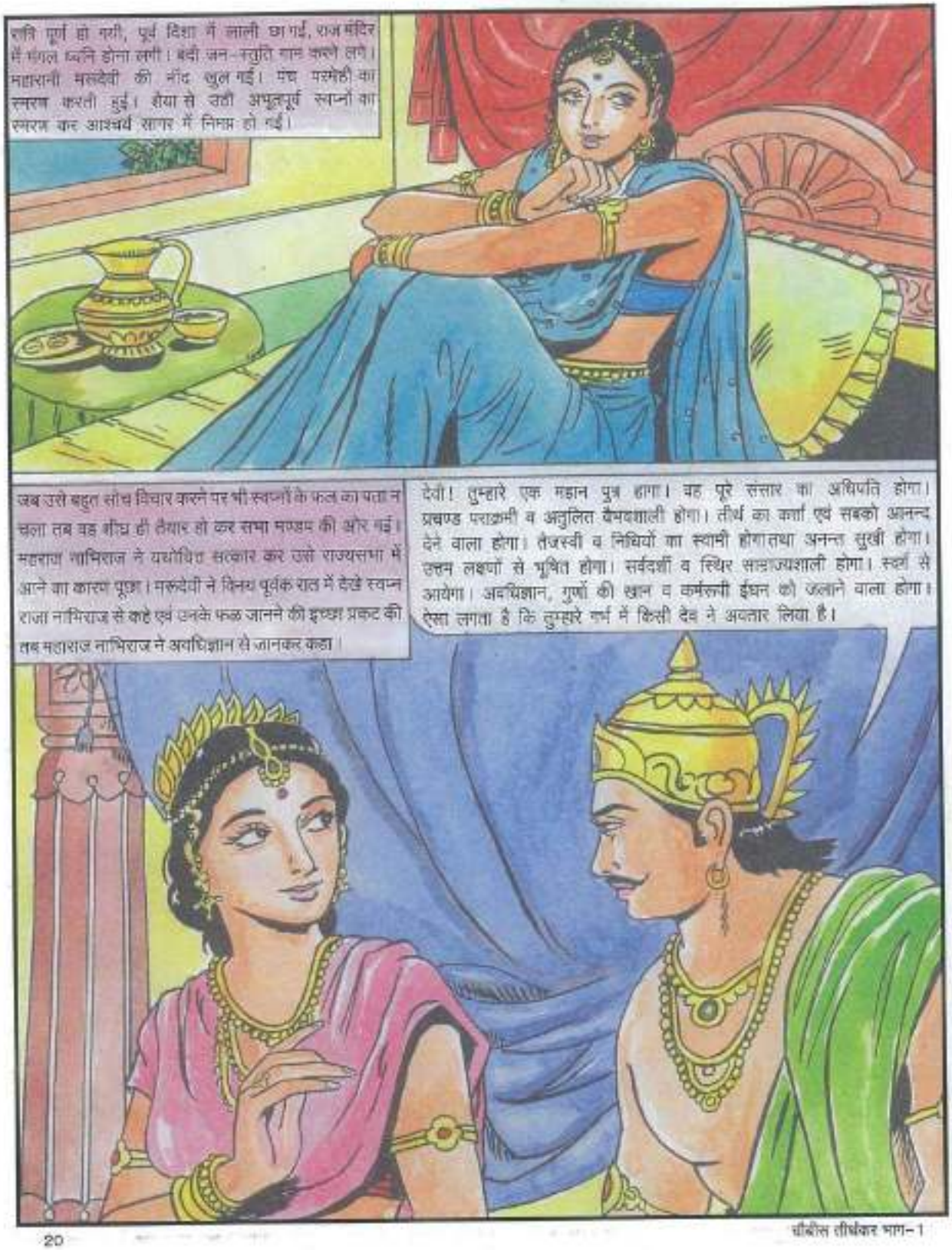
रात्रि पूर्ण हो गयी, पूर्व दिशा में लाली छा गई, राज मंदिर में मंगल ध्वनि होना लगी। बंदी जन-स्तुति गान करने लगे। महारानी मरुदेवी की नींद खुल गई। मंद मुस्कुरा का स्मरण करती हुई। शैया से उठी अभूतपूर्व स्वप्नों का स्मरण कर आश्चर्य सागर में निमग्न हो गई।
जब उसे बहुत सोच विचार करने पर भी स्वप्नों के फल का पता न चला तब वह शीघ्र ही तैयार हो कर सभा मण्डप की ओर गई। महाराज नाभिराज ने यथोचित सत्कार कर उसे राज्यसभा में आने का कारण पूछा। मरुदेवी ने विनय पूर्वक रात में देखे स्वप्न राजा नाभिराज से कहे एवं उनके फल जानने की इच्छा प्रकट की तब महाराज नाभिराज ने अवधिज्ञान से जानकर कहा।
देवी! तुम्हारे एक महान पुत्र होगा। वह पूरे संसार का अधिपति होगा। प्रचण्ड पराक्रमी व अतुलित वैभवशाली होगा। तीर्थ का कर्ता एवं सबको आनन्द देने वाला होगा। तेजस्वी व निधियों का स्वामी होगा तथा अनन्त सुखी होगा। उत्तम लक्षणों से भूषित होगा। सर्वदर्शी व स्थिर साम्राज्यशाली होगा। स्वर्ग से आयेगा। अवधिज्ञान, गुणों की खान व कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा। ऐसा लगता है कि तुम्हारे गर्भ में किसी देव ने अवतार लिया है।

देवों के आसन अकस्मात कम्पायमान हुए जिससे उन्हें वृषभनाथ के गर्भारोहण का निश्चय हो गया। इन्द्र की आज्ञानुसार दिक्कुमारियां लक्ष्मी आदि देवियां जिन माता महारानी मरुदेवी की सेवा के लिए उपस्थित हो गई। इन्द्र आदि समस्त देवों ने अयोध्यापुरी में खूब उत्सव किया। रत्नों को बरसाते रहे। इस तरह आषाढ़ शुक्ला द्वीतीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र ने सर्वार्थसिद्धि से चयकर महादेवी मरुदेवी के गर्भ में स्थान पाया।

चैत्र कृष्णा नवमी के दिन उत्तम लग्न में प्रातः काल के समय मरुदेवी ने पुत्र रत्न प्रसव किया। वह सूर्य के समान तेजस्वी प्रतीत होता था। उस समय तीनों लोकों में उल्लास छा गया था। दिशाएं निर्मल हो गयी थी। अयोध्या नगरी की शोभा अनुपम प्रतीत होती थी। सौ धर्म स्वर्ग का इन्द्र भी इन्द्राणी के साथ अयोध्यापुरी की ओर चला। मार्ग में अनेक सुर नर्तकियां नृत्य करती जाती थी। सरस्वती वीणा बजाती थी। गंधर्व गीत गाते थे। भरताचार्य नृत्य की व्यवस्था कर रहे थे। देव सेना आकाश से नीचे उतरी।

इन्द्र-इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख देव राजा नाभिराज के भवन पर पहुंचे एवं तीन प्रदक्षिणा दे कर उनके भीतर हुए बाल जिनेन्द्र को लाने के लिए इन्द्र ने इन्द्राणी को प्रसूति गृह में भेजा एवं स्वयं द्वार पर खड़ा रहा- इन्द्राणी ने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया, मरुदेवी को मायामयी निद्रा से अचेत कर उसके समीप माया निर्मित एक बालक को सुलाकर बालक जिनेन्द्र को बाहर ले आई। उनके आगे दिक्कुमारीयां अष्ट मंगल लिए हुए चल रही थी, मंगल गीत गा रही थी। जय घोष कर रही थी। इन्द्राणी ने जिन बालक को लेजाकर इन्द्र को सौंप दिया।

सौधर्म इन्द्र ने उन्हे ऐरावत पर बैठाया। बालक वृषभनाथ के शीश पर ऐशान स्वर्ग का धवलछत्र लगाया सनत्कुमार एवं महेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र दोनो चमर ढुलार रहे थे। सब देवता जय-जयकार कर रहे थे। आकाश मार्ग से मेरुपर्वत की ओर, चले धीरे-धीरे चलकर...

निन्यानवे हजार योजन ऊंचे पर्वत पर पहुंच गये। शिखर पर जो पाण्डुक वन में देव सेना को ठहराकर, पाण्डुक शिला पर मध्य सिंहासन पर बालक जिनेन्द्र को विराजमान कर दिया। पास के दोनो ओर सिंहासनों पर ऐशान स्वर्ग के इन्द्र बैठे। इन दोनों इन्द्रों के आसन से क्षीर सागर तक देवों की दो पंक्तियां बन गयी जो वहां से जल से भरे कलश हाथों हाथ इन्द्र के पास पहुंचा रही थी। जब अभिषेक का कार्य पूरा हो गया तब उत्तम वस्त्र से बालक जिनेन्द्र की देह पोंछ कर इन्द्राणी ने तरह-तरह के आभूषण पहनाए, अनेक स्तोत्रों से देवराज ने उनकी स्तुति की। देव नर्तकियों ने नृत्य किया, समस्त देवों ने उनका जन्म कल्याणक देखकर अपने को धन्य माना। इन्द्र ने बालक का नाम वृषभनाथ रखा। मेरुपर्वत पर अभिषेक महोत्सव समाप्त कर अयोध्या वापस आये व बालक को माता की गोद में देकर अभिषेक विधि के समाचार सुनाये जिससे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए।

महाराज नाभिराज ने दिल खोल कर अनेक उत्सव किए। जन्माभिषेक का महोत्सव पूराकर देव एवं देवेन्द्र अपने-अपने स्थानों को चले गए। जाते समय नाभिराज के महल पर भगवान के रक्षा के लिए चतुर कुछ देवकुमार एवं देव कुमारियों को छोड़ गया था। इन्द्र ने भगवान के हाथ के अंगूठे में अमृत भर दिया था। जिसे चूस-चूसकर वे बड़े हुए थे। उन्हें माता का दूध पीने की आवश्यकता नहीं हुई थी।

उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्हे किसी गुरु से विद्या सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। आप ही समस्त विद्याओं एवं कलाओं के कुशल हो गये थे। कभी विद्वान मित्रों के साथ बैठकर कविता की रचना करते। तरह-तरह की पहेलियों के द्वारा मन बहलाते। कभी सुन्दर संगीत सुधा का पान करते। कभी मयूर, तोता, हंस, सारस आदि पक्षियों की मनोहर चेष्टाएं देखकर प्रसन्न होते। कभी प्रजाजन से मधुर वार्तालाप करते।

कभी हाथी पर सवार हो वन नदी, तालाब उद्यान आदि की सैर करते। कभी ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर प्रकृति की शोभा देखते थे। इस प्रकार राजकुमार वृषभनाथ ने सुख पूर्वक कुमार काल व्यतीत कर तरुणावस्था में प्रवार्पण किया। उस समय उनके शरीर की शोभा तप्त कंचन की तरह अत्यधिक भली मालूम होती थी। उस युवावस्था में भी राजपुत्र वृषभनाथ के मन पर विकार के कोई चिह्न प्रकट नहीं हुए थे उनका बालकों जैसा उन्मुक्त हास्य एवं निर्विकार चेष्टाएं ज्यों की त्यों विद्यमान थी।

महाराज नाभिराज ने वृषभनाथ के बढ़ते हुए यौवन को देखकर उनकी विवाह करना चाहा।

इनका हृदय अभी से निर्विकार है- जब ये बंधन मुक्त हाथी की भांति हठ कर तप के लिए वन को चले जावेंगे तब दूसरे की कन्या का क्या होगा? सम्भव है विवाह कर देने से कुछ परिचित हो सकेंगे यह युग का आरम्भ है। सृष्टि की व्यवस्था एक प्रकार से नहीं के बराबर है। इस युग में विवाह की रीति प्रचलित करना सृष्टि को व्यवस्थित बनाना आवश्यक है।

ऐसा सोचकर पिता नाभिराज वृषभनाथ के पास गए।

इस समय मानव समाज को सृष्टि का क्रम सिखलाने के लिए आप सर्वाधिक उपयुक्त है। इसलिए आप किसी योग्य कन्या के साथ विवाह करने की अनुमति दीजिए।

तब भगवान वृषभनाथ ने मंद मुस्कान से पिता के वचनों का उत्तर दिया महाराज नाभिराज मौन सम्मति पाकर बहुत प्रसन्न हुए।

उस समय विवाह की तैयारियां शुरू कर दी। शुभ मुहूर्त में राजा कच्छ की बहिन यशस्वती एवं महाकच्छ की बहिन सुनन्दा के साथ भगवान वृषभनाथ का विवाह कर दिया। वे दोनो अनुपम सुन्दरी थी। पुत्र वधुओं को देखकर माता मरुदेवी का हृदय फूला न समाता था। अयोध्या में कई तरह के उत्सव मनाये गये।

एक दिन रात के समय महादेवी यशस्वी ने सोते समय रात्रि के पिछले प्रहर में सुमेरु पर्वत, सूर्य, चन्द्र, कमल, अग्नि एवं समुद्र ये स्वप्न देखे। प्रातः महादेवी ने सपनों का फल महाराज वृषभनाथ से पूछा उन्होंने हंसते हुए कहा-

तुम्हारे चक्रवर्ती, प्रतापी, कान्तिवान, लक्ष्मीवान, समस्त वसुधा का पालन कर्ता, गंभीर हृदय वाला, चरम शरीरी पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र इक्ष्वाकु वंश की कीर्ति बढ़ायेगा। अपने अतुल्य भुजबल को भरत क्षेत्र के छहों खण्डों पर राज्य करेगा।

स्वप्नों का फल सुनकर महादेवी यशस्वी बहुत हर्षित हुई।

इसके अनन्तर श्वेत वर्ण जीव सुबाहु जो कि सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वहां से च्यवकर महादेवी यशस्वी के गर्भ में आया। धीरे-धीरे शरीर में गर्भ के चिह्न प्रकट हो गए। समस्त शरीर रक्तहीन हो गया। उस समय उनका मन वीर चेष्टाओं में रमता था। योद्धाओं के वीरतापूर्ण वचन सुनती थी शूरवीरों की युद्ध कला देखकर प्रसन्न होती थी। ऐसा लगता है। कोई पराक्रमी पुरुष अवतार लेगा। क्रमशः नौ महीने बीतने पर शुभलग्न में प्रातःकाल तेजस्वी बालक को प्रसूत किया।

वह बालक सर्वभौम समस्त पृथ्वी का अधिपति अर्थात चक्रवर्ती होगा।

जिन राज वृषभदेव बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे। मरुदेवी एवं नाभिराज के हर्ष का तो पारावार ही नहीं था। सम्पूर्ण नगरी पताकाओं से सजाई गई थी। राजा नाभिराज ने अभूतपूर्व दान दिया था। कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओं ने मिलकर नाती का जन्मोत्सव मनाया एवं उसका नाम भरत रखा। भगवान वृषभनाथ के वज्रजंघ भव में जो आनन्द नाम का पुरोहित था एवं क्रम से सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था। वह कुछ समय बाद महादेवी यशस्वी के गर्भ से वृषभसेन नाम का पुत्र हुआ। फिर क्रम से सेठ धन मित्र शार्दुलार्य, वराहार्य एवं नकुलार्य के जीव इसी महादेवी के गर्भ से क्रम से अनन्त विजय, अनन्त वीर्य, अच्युत, वीर एवं वरवीर नाके पुत्र उत्पन्न हुए। इस तरह भरत के बाद निन्यानवे पुत्र तथा ब्राह्मी नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई।

उधर भगवान वृषभनाथ की दूसरी रानी सुनन्दा के गर्भ में वज्रजंघ भव का सेनापति जो ग्राम से अहमिन्द्र हुआ था। अवतीर्ण हुआ– जिसका नाम बाहुबली था। जैसा नाम था वैसे ही गुण थे। उनकी वीर चेष्टाओं के सामने महादेवी यशस्वी के समस्त पुत्रों को मुंह की खानी पड़ती थी। भगवान वृषभनाथ के वज्रजंघ भव में अनुन्दरी नाम की बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दा के गर्भ से सुन्दरी नाम की पुत्री हुई। इस प्रकार भगवान वृषभनाथका सभी परिवार के साथ सुख से व्यतीत होता था।

पुत्र–पुत्रीयों को विद्या प्रदान के योग्य समझकर वर्णमाला सिखलाने के बाद ब्राह्मी को गणित–शास्त्र तथा सुन्दरी को व्याकरण, छंद तथा अलंकार शास्त्र सिखलाए। ज्येष्ठ पुत्र भरत के लिए अर्थशास्त्र तथा नाटक शास्त्र वृषभसेन के लिए संगीत शास्त्र अनन्त विजय को चित्रकला तथा गृहनिर्माण विद्या, बाहुबली को कामतंत्र, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, हस्तितंत्र, अश्व तंत्र तथा रत्न परीक्षा शास्त्र पढ़ाये। इसी तरह अन्य पुत्रों को भी लोकोपकारी समस्त शास्त्र पढ़ाये। इस प्रकार महाप्रतापी पुत्रों गुणवती पत्नियों के साथ विनोदमय जीवन बीताते हुए वृषभनाथ का दीर्घ जीवन सागर समान बीतता गया।....

वह समय अब सर्पिणी काल का था। इसलिए प्रत्येक विषय में ह्रास ही ह्रास होता था। कल्पवृक्षों के बाद बिना बोई हुई धान पैदा होती थी। अब वह भी नष्ट हो गई। औषधियों की शक्ति कम हो गई। मनुष्य खाने पीने के लिए दुखी होने लगे। सब ओर त्राहि–त्राहि मच गई। अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं देख कर लोग वृषभनाथ के पास पहुंचे –

हे त्रिभुवन पते ! हे दयानिधे ! हम लोगों के दुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुके थे। पर अब रही सही धान्य आदि भी नष्ट हो गई है। इसलिए भूख–प्यास की बाधाएं हम सबको अत्यधिक कष्ट पहुंचा रही है। वर्षा, धूप एवं सर्दी से बचने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। नाथ ! इस तरह हम कब तक जीवित रहेंगे।

आप हम सब के उद्धार के लिए ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। आप विज्ञ हैं, समर्थ है, दया के सागर हैं, इसलिए जीविका के कुछ उपाय बतलाकर हमारी रक्षा कीजिए, प्रसन्न होइये।

इस तरह लोगों की अभिलाषी सुनकर भगवान वृषभदेव का हृदय दया से भर आया। उन्होंने निश्चय किया कि –

पूर्व पश्चिम विदेह क्षेत्रों की तरह यहां भी, ग्राम–नगर आदि का विभाग कर असिमसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य एवं विद्या इन छः कार्यों की प्रवृत्ति करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही लोग सुख से अपनी आजीविका ग्रहण कर सकेंगे।

ऐसा निश्चय कर उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया एवं इच्छानुसार समस्त व्यवस्था करने के लिए इन्द्र का स्मरण किया। समस्त देवों सहित इन्द्र आया। महाराज का विचार जानकर सबसे पहले उसने अयोध्यापुरी में चारों दिशाओं में बड़े–बड़े जिन मंदिरों की रचना की। फिर काशी, कौशल, कलिंग, कर्नाटक, अंग, बंग, नेपाल, पोल, केरल, मालवा, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, आन्ध्र, तुरुष्क, कश्मीर, विदर्भ आदि देशों का विभाग किया। उन देशों में नदी, नहर, तालाब, वन, उपवन आदि लोकोपयोगी उपादानों का निर्माण किया – फिर उन देशों के मध्य परिखाकोट, उद्यान आदि से सोभायमान गांव, पुर, कर्वट आदि की रचना की तब से इन्द्र का नाम पुरन्दर पड़ा। वृषभेश्वर की आज्ञा पाकर देवेन्द्र ने प्रजा को उन नगरों में बसवाया। प्रजाजन भी नवनिर्मित भवनों में रहकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन अवसर पाकर वृषभदेव ने प्रजा के लोगों से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना कर उनके आजीविका के योग्य उपाय बताये। उन्होंने क्षत्रियों को धनुष बाण तलवार आदि शस्त्रों को चलाना सिखाया। दीन–हीन जनों की रक्षा का भार सौंपा। वैश्यों को देश–विदेश में व्यापार करना सिखाया। शूद्रों को दूसरों की सेवा का कार्य सौंपा। उस समय भगवान वृषभनाथ का आदेश लोगों ने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया। जिससे सब ओर सुख शान्ति हो गयी।

वृषभनाथ ने सृष्टि की सुव्यवस्था की थी इसलिए वे 'सृष्टाब्रह्मा' कहलाये। यह युग कृतयुग नाम से पुकारा जाने लगा। महाराज नाभिराज की सम्मति से उनका राज्याभिषेक किया गया। मणि जड़ित, स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए आदिनाथ तेजोमय मुखकमल सूर्य के समान दमकता था। प्रजा को सुव्यवस्थित बनाने के लिए क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण का विभाग कर दिया था। उन्हें उनके योग्य कार्य सौंप दिया था। पर काल के प्रभाव से उत्तरोत्तर लोगों के हृदय कुटिल होने लगे। इसलिए उन्होंने द्रव्य क्षेत्र, काल एवं भाव का ध्यान रखते हुए। अनेक तरह के दण्ड विधान प्रयुक्त किये थे।

उन्होंने राज्य व्यवस्था को महामण्डलिक रूप में संगठित किया। चार हजार राजाओं पर एक महामण्डलिक राजा नियुक्त किया। चार महामण्डलिक राजाओं पर स्वयं महामण्डलेश्वर होकर सबकी देखभाल करते थे। अपने पुत्रों में ज्येष्ठ भरत को युवराज बनाया तथा शेष पुत्रों को भी योग्य पदों पर नियुक्त किया। भगवान वृषभनाथ ने सब मनुष्यों को इक्षु (ईख) के रस का संग्रह करने का उपदेश दिया लोग उन्हें 'इक्ष्वाकु' कहने लगे। प्रजापालन के उपाय प्रचलित किये थे। इसलिए प्रजापति भी कहते थे। कुलधर, काश्यप आदि ब्रह्मा अनेक नाम से पुकारते थे।

एक दिन प्रजापति वृषभनाथ राजसभा में बैठे थे। अनेक देव-देवियों के साथ सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र वहां आया। राजसभा में एक अप्सरा नीलांजना ने नृत्य शुरू किया। अचानक नीलांजना नृत्य करते-करते क्षण भर में विद्युत की भांति विलीन हो गई। तब इन्द्र ने रस भंग न हो इसलिए उसी के समान दूसरी अप्सरा को खड़ा कर दिया। वह भी नीलांजना की तरह ही नृत्य करने लगी। भेद विज्ञानी वृषभदेव से यह रहस्य छिप न सका, वे उदासीन हो गये।

यह शरीर वायु के वेग से कम्पित दीप शिखा की भान्ति नश्वर है। यौवन संध्या की लाली के समान देखते-देखते नष्ट हो जाता है। शरीर इस आत्मा के साथ दूध एवं जल की तरह मिला हुआ है। वह भी समय पाकर आत्मा से पृथक हो जाता है। तब बिलकुल अलग रहने वाले स्त्री, पुत्र-धन, सम्पत्ति आदि में कैसे बुद्धि स्थिर की जा सकती है? यह प्राणी पाप के वश में नरक गति जाता है। तिर्यंच गति में उष्ण, भूख-प्यास आदि अनेक दुख भोगता है। कदाचित मनुष्य भी हुआ तो दरिद्रता, रोग, मानसिक दुखों से दुखी होता है। इस तरह चारों गतियों में कहीं भी सुख का ठिकाना नहीं है। सच्चा सुख मोक्ष में ही प्राप्त हो सकता है एवं वह मोक्ष केवल मनुष्य पर्याय में ही प्राप्त किया जा सकता है। इस मनुष्य पर्याय को पाकर यदि मैंने आत्म कल्याण के लिए प्रयत्न नहीं किया तब मुझसे मूर्ख अन्य कौन होगा?

भगवान वृषभदेव ने ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी देकर बाहुबली को युवराज बना दिया। स्वयं राजकार्य की ओर से बिल्कुल निराकुल हो गए। त्रिभुवनपति भगवान वृषभनाथ महाराज नाभिराज एवं महारानी मरुदेवी से आज्ञा लेकर वन जाने के लिए देव निर्मित पालकी पर सवार हुए।

वन में पहुंच कर पालकी से उतर गये। चन्द्रकान्त मणि की शिला पर बैठ गये। समस्त वस्त्र-भूषण उतार दिये एवं पंच मुट्ठियों से केश उखाड़ डाले तथा पूर्व दिशा की ओर मुख करके खड़े होकर सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करते हुए। सिद्ध भगवान की साक्षी पूर्वक समस्त परिग्रहों का त्याग कर दिया। इस तरह महामुनि आदिनाथ ने चैत्र वदी नवमी के दिन अपराह्नकाल के समय उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जिनदीक्षा ग्रहण की थी। वन में महामुनि आदिनाथ छह महीना का अनशन धारण कर एक आसन से बैठे हुए थे। धूप, वर्षा, शीत आदि की बाधाएं उन्हें रचमात्र भी विचलित नहीं कर सकी थी। वे मेरु के समान अचल थे। उनकी दृष्टि नासा के अग्रभाग पर लगी हुई थी।

जिस वन में महामुनि वृषभेश्वर ध्यान कर रहे थे उस वन में जन्म विरोधी जीवों ने भी विरोध छोड़ दिया। गाय, सिंह, मृग, सर्प, नेवला, मोर आदि एक दूसरे के साथ क्रीड़ा किया करते थे। सच है विशुद्ध आत्मा का प्रभाव सब पर पड़ता है।

ध्यान करते-करते जब छः माह व्यतीत हो गये। तब भगवान वृषभदेव ने अपना ध्यान मुद्रा समाप्त कर आहार लेने का विचार किया, मुनि मार्ग चलाने का ख्याल कर प्रभु ने विहार शुरू किया। महामुनि आदिनाथ से पहले वहां कोई मुनि हुआ ही नहीं था। इसलिए लोग मुनिमार्ग से सर्वथा अपरिचित थे। वे यह नहीं समझते थे कि मुनियों के लिए आहार कैसे दिया जाता है। विधिपूर्वक न मिलने के कारण वे बिना आहार लिए ही नगरों से वापस चले जाते थे। इस तरह स्थान-स्थान पर घूमते हुए उन्हें एक माह बीत गया। देवराज जिनकी आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते थे। सम्राट भरत जिन का पुत्र था। स्वयं तीनों लोकों के अधिपति कहलाते थे। वे भी कई नगरों में घूमते रहे, पर आहार न मिला। इस तरह महामुनि आदिनाथ ने एक वर्ष तक कुछ भी नहीं खाया-पिया, तो भी उनके चित्त एवं शरीर में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती थी।

उस समय कुरु जांगल देश के हस्तिनापुर में राजा सोमप्रभ राज्य करते थे। उनके छोटे भाई का नाम श्रेयांस कुमार था। श्रेयांस कुमार भगवान आदिनाथ के वज्रजंघ भव में श्रीमती का जीव था। जो ज्ञान से आर्य, स्वयंप्रभ देव केशव, अच्युत, प्रतीन्द्र, घनदेव आदि होकर अहमिन्द्र हुआ था। वहां से चयकर श्रेयांस कुमार हुआ।

आज मैं ने रात्रि के पिछले पहर में बड़ा विचित्र स्वप्न देखा। अत्यन्त ऊँचा मेरुपर्वत है, कल्पवृक्ष की शाखाओं में आभूषण अलंकृत हैं। मूंगा के समान लाल-लाल से शोभित सिंह, अपने सींगों पर मिट्टी लगाया हुआ बैल, चमकता सूर्य, किरण युक्त चन्द्रमा, लहराता समुद्र, अष्ट मंगल द्रव्यों को लिए व्यंतर देव थे।

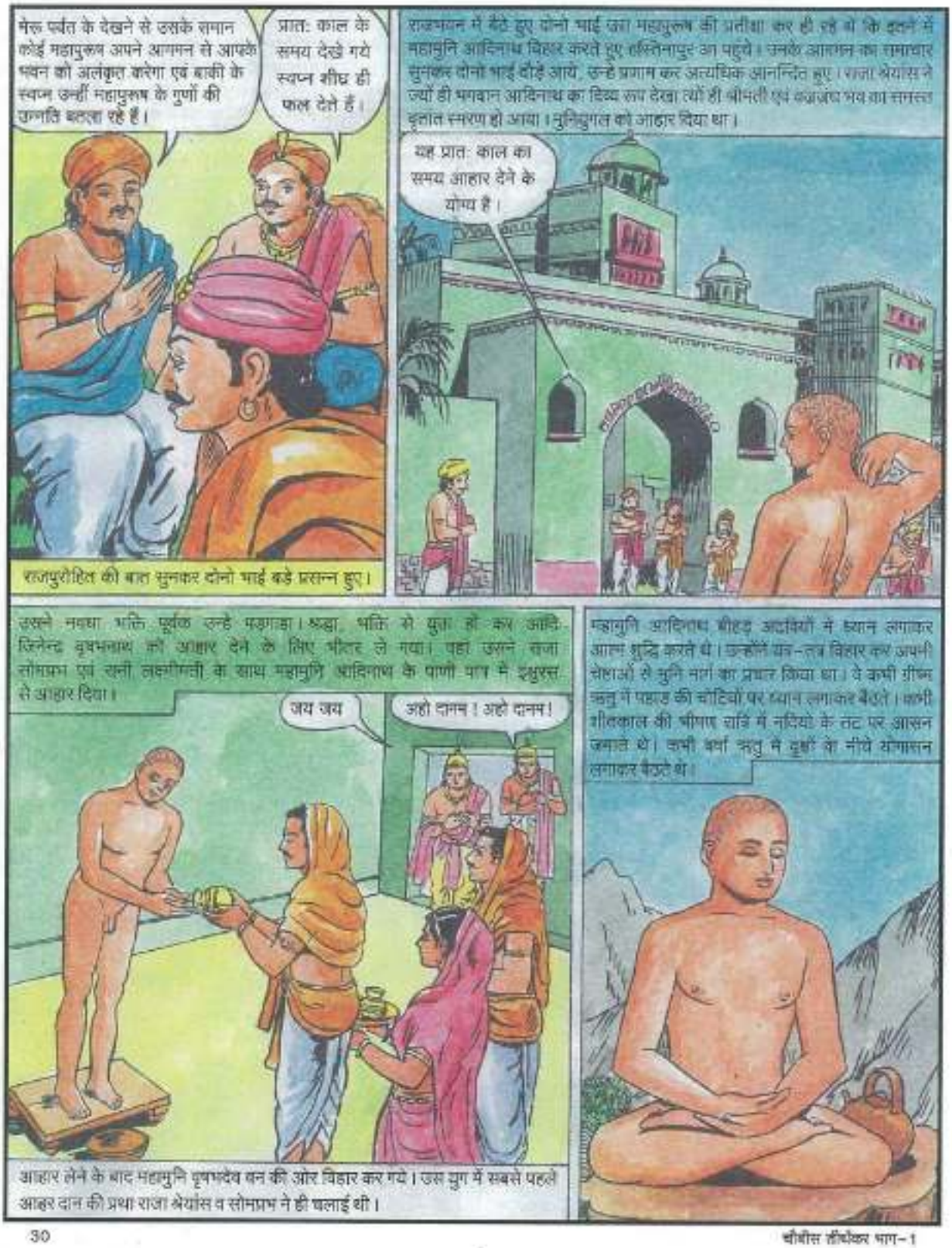
मेरु पर्वत के देखने से उसके समान कोई महापुरुष अपने आगमन से आपके भवन को अलंकृत करेगा एवं बाकी के स्वप्न उन्हीं महापुरुष के गुणों की उन्नति बतला रहे हैं।
प्रातः काल के समय देखे गये स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं।
राजपुरोहित की बात सुनकर दोनो भाई बड़े प्रसन्न हुए।
राजभवन में बैठे हुए दोनो भाई उस महापुरुष की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इतने में महामुनि आदिनाथ विहार करते हुए हस्तिनापुर आ पहुंचे। उनके आगमन का समाचार सुनकर दोनो भाई दौड़े आये, उन्हें प्रणाम कर अत्यधिक आनन्दित हुए। राजा श्रेयांस ने ज्यों ही भगवान आदिनाथ का दिव्य रूप देखा त्यों ही श्रीमती एवं वज्रजंघ भव का समस्त वृत्तांत स्मरण हो आया। मुनियुगल को आहार दिया था।
यह प्रातः काल का समय आहार देने के योग्य है।
उसने नवधा भक्ति पूर्वक उन्हें पड़गाहा। श्रद्धा, भक्ति से युक्त हो कर आदि-जिनेन्द्र वृषभनाथ को आहार देने के लिए भीतर ले गया। वहां उसने राजा सोमप्रभ एवं रानी लक्ष्मीमती के साथ महामुनि आदिनाथ के पाणी पात्र में इक्षुरस से आहार दिया।
जय जय
अहो दानम ! अहो दानम !
आहार लेने के बाद महामुनि वृषभदेव वन की ओर विहार कर गये। उस युग में सबसे पहले आहार दान की प्रथा राजा श्रेयांस व सोमप्रभ ने ही चलाई थी।
महामुनि आदिनाथ बीहड़ अटवियों में ध्यान लगाकर आत्म शुद्धि करते थे। उन्होंने यत्र-तत्र विहार कर अपनी चेष्टाओं से मुनि मार्ग का प्रचार किया था। वे कभी ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ की चोटियों पर ध्यान लगाकर बैठते। कभी शीतकाल की भीषण रात्रि में नदियों के तट पर आसन जमाते थे। कभी वर्षा ऋतु में वृक्षों के नीचे योगासन लगाकर बैठते थे।

इस तरह उग्र तपश्चर्या करते–करते उन्हें हजार वर्ष बीत गये, तब वे एक दिन पुरीमतालपुर नगर के पास शकट नामक वन में निर्मल शिला तल पर पद्मासन लगाकर बैठ गये। उस समय उनकी आत्मविशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। फलस्वरूप श्रावकश्रेणी में प्रवेशकर शुक्ल ध्यान के द्वारा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अंतराय इन चार घातिया कर्मों का नाश कर फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान प्राप्त किया। जिनेन्द्र भगवान वृषभनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। यह जानकर धनपति कुबेर ने भव्य समवशरण की रचना की। ऐरावत गुन्द समस्त परिवार के साथ पुरीमतालपुर आया, महाराज भरत को जगद्गुरु वृषभदेव को केवल ज्ञान होने की सूचना दी। उसी समय महाराज भरत के पुरोहित व आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट होने का समाचार मिला। राजा भरत अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे भी भाई बन्धु मंत्री पुरोहित मरुदेवी आदि परिवार के साथ के केवल ज्ञान महोत्सव में पुरीमतालपुर पहुंचे। उन्होंने अतिशयपूर्ण दिव्य ध्वनी में धर्म–अधर्म का स्वरूप समझाकर सम्यग्दर्शन ज्ञान, चरित्र का जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा–मोक्ष इन सात तत्वों का पुद्गल, धर्म–अधर्म आकाश एवं काल इन छः द्रव्यों का, पुण्य–पाप का एवं लोक–अलोक का स्वरूप बताया।

जब तक प्राणियों की दृष्टि बाह्य भौतिक पदार्थों में उलझी रहेगी, तब तक उसे आत्मीय आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। उसे प्राप्त करने के लिए तो सब ओर से नाता तोड़कर कठिन तपस्या करने की आवश्यकता है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की व आत्मध्यान में अचल होने की आवश्यकता है।

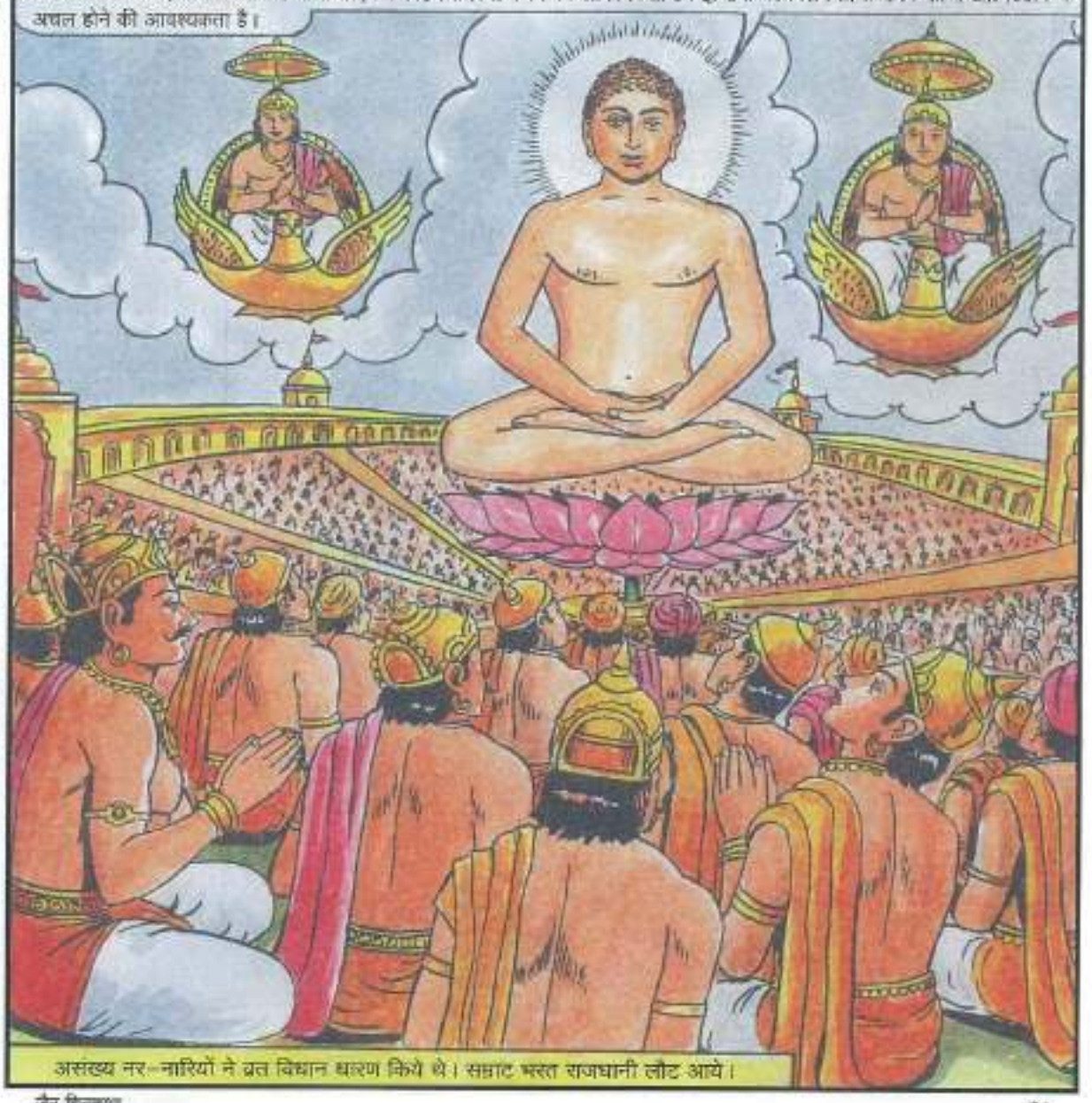

असंख्य नर–नारियों ने व्रत विधान धारण किये थे। सम्राट भरत राजधानी लौट आये।

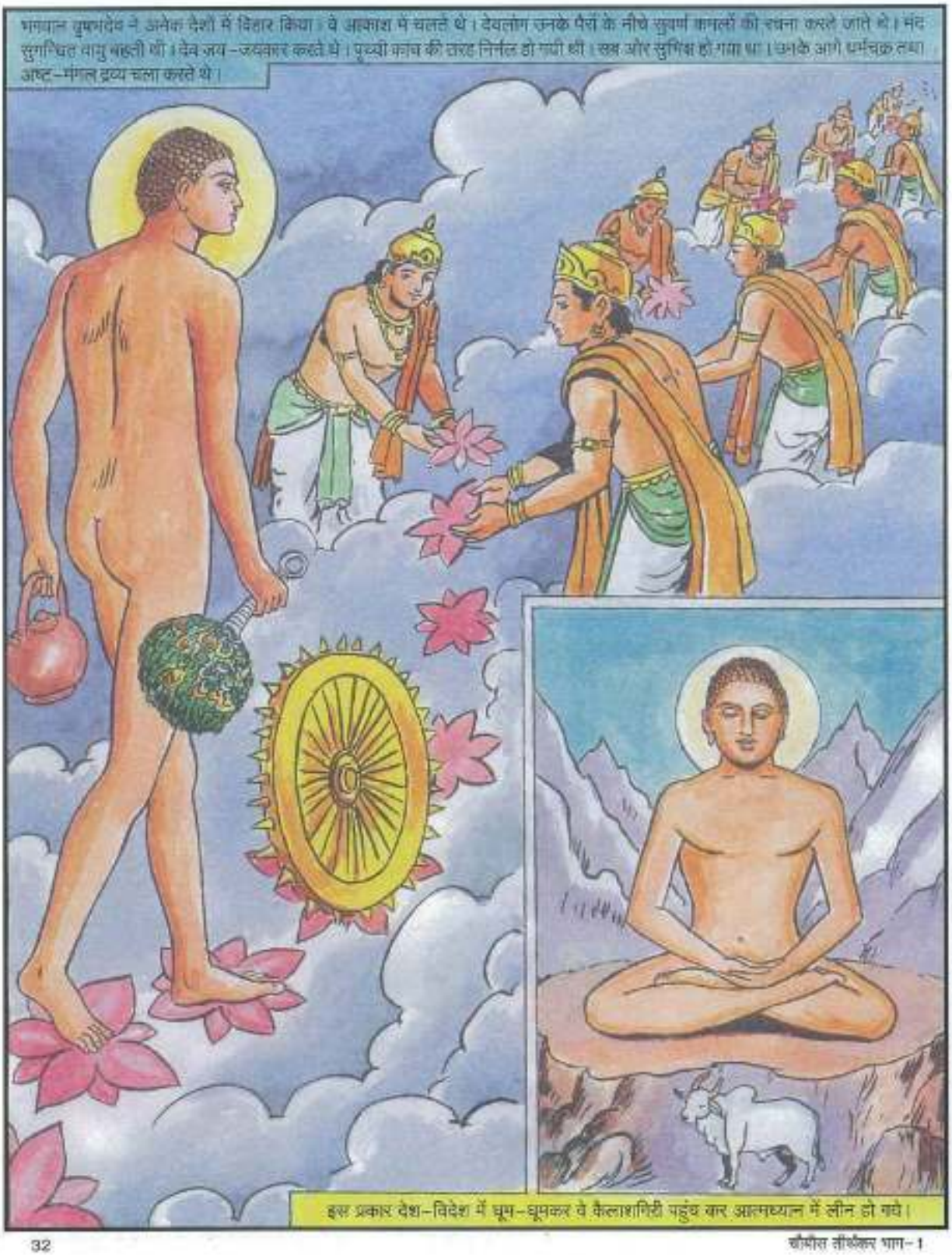
भगवान वृषभदेव ने अनेक देशों में विहार किया। वे आकाश में चलते थे। देवलोग उनके पैरों के नीचे सुवर्ण कमलों की रचना करते जाते थे। मंद सुगन्धित वायु बहती थी। देव जय-जयकार करते थे। पृथ्वी काच की तरह निर्मल हो गयी थी। सब ओर सुगन्धि हो गया था। उनके आगे धर्मचक्र तथा अष्ट-मंगल द्रव्य चला करते थे।
इस प्रकार देश-विदेश में घूम-घूमकर वे कैलाशगिरी पहुंच कर आत्मध्यान में लीन हो गये।

जैन धर्म के प्रसिद्ध महापुरुषों पर आधारित रंगीन सचित्र जैन चित्र कथा

जैन धर्म के प्रसिद्ध चार अनुयोगों में से प्रथमानुयोग के अनुसार जैनाचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ जिनमें तीर्थंकरों, चक्रवर्ति, नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव, कामदेव, तीर्थक्षेत्रों, पंचपरमेष्ठी तथा विशिष्ट महापुरुषों के जीवन वृत्त को सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत कर जैन संस्कृति, इतिहास तथा आचार-विचार से सीधा सम्पर्क बनाने का एक सरलतम् सहज साधन **जैन चित्र कथा** जो मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान वर्द्धक संस्कार शोधक, रोचक सचित्र कहानियां आप पढ़ें तथा अपने बच्चों को पढ़ावें **आठ वर्ष से अस्सी** तक के बालकों के लिये एक आध्यात्मिक टोनिक **जैन चित्र कथा**

सम्पर्क सूत्र :

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर

विलासपुर चौक,
दिल्ली-जयपुर N.H. 8,
गुड़गाँव, हरियाणा
फोन : 09466776611
09312837240

द्वारा
आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला
एवं
मानव शान्ति प्रतिष्ठान

ब्र. धर्मचन्द शास्त्री
प्रतिष्ठाचार्य

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर

विश्व की प्रथम विशाल 27 फीट उत्तंग पद्मासन कमलासन युक्त युग प्रर्वतक भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली के दर्शन कर पुण्य लाभ प्राप्त करें।

मानव शान्ति प्रतिष्ठान

विलासपुर चौक, निकट पुराना टोल, दिल्ली-जयपुर राष्ट्रीय राजमार्ग 8,
गुड़गांव (हरियाणा) फोन नं. : 09466776611, 09312837240